योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

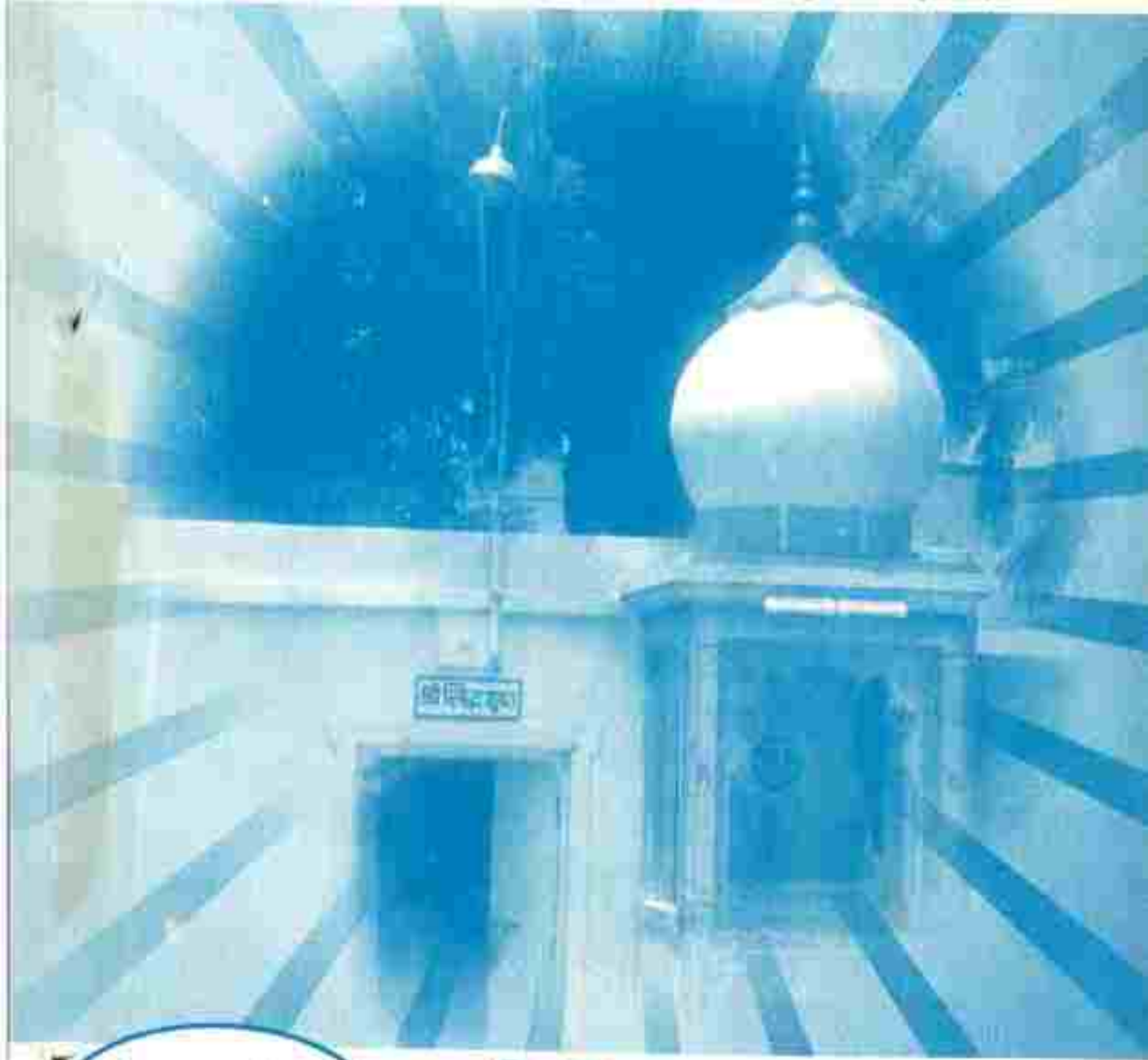

वर्ष : 39 - अंक : 5
अगस्त, 2006

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

नादत्ते कस्यित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति अन्तवः।।

सर्व व्यापक परमात्मा न पाप ग्रहण करता है और न पुण्य। अतः जीवों का कर्मबन्धन केवल अज्ञानमात्र है, जिसके कारण सभी जीव अपने को मोहमाया में फँसा मानते हैं।

✿ ✿ ✿

अनाचारस्तु मालिन्यमत्याचारस्तु मूर्खता।
विचाराचार संयोगः सदाचारस्य लक्षणम्।

—बोधसार

अनाचार से मनुष्य के चित्त में मलिनता होती है और आवश्यकता से अधिक आचार करना मूर्खता (या दम्भ) कहा गया है। अतः विचारपूर्वक जो आचार किया जाता है, वही सदाचार कहलाता है।

✿ ✿ ✿

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

—श्वेताश्वेतरोपनिषद् ६/२३

जिसकी परमात्मा में उत्तम भक्ति है और परमात्मा के समान ही अपने गुरु में भक्ति है, उस महात्मा को सभी पदार्थ स्पष्ट हो जाते हैं।

✿ ✿ ✿

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जराः।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः।।

—ब्रह्मखण्ड १६/५५

पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है। पाप से ही दैन्य, दुःख तथा भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है।

✿ ✿ ✿

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 39 अंक 5	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम् मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	अगस्त 2006

गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम्।।

बैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं
नमस्कृतं देवगणैः परं वरम्।
गोपाललीलाभियुतं भजाम्यहं
गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम्।।

(गर्ग मा ४/८)

अर्थात्

हे प्रभो ! आप बैकुंठपुरी में सदा लीला में तत्पर रहने वाले हैं। आपका स्वरूप परम मनोहर है। देवगण सदा आपको नमस्कार करते हैं। आप परम श्रेष्ठ हैं। गो-पालक की लीला में आपकी विशेष रुचि रहती है—ऐसे मैं आपका भजन करता हूँ। साथ ही आप गोलोकाधिपति को मैं नमस्कार करता हूँ।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डा. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज 3
2. सम्पादकीय 10
3. सद्गुरु-भगवान ही योग के प्रणेता – वेदव्रत द्विवेदी, उमापुर 14
4. भजन – भूपेन्द्र 'अंकुश', जलेसर 16
5. योगाभ्यासी साधक श्री आत्मा प्रसादजी – केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी 17
6. सुर भी तेरा, स्वर भी तेरा – जगदीश बंसल राय 'अधम', गोहाना मंडी 21
7. आश्रम की छवि बिसरत नाहीं ! – दिनेश शर्मा, जरैरा (दिल्ली) 24
8. संस्मरणात्मक कतिपय अंशों का निरूपण – द्वारिका प्रसाद शर्मा 25
9. हिमालय के अमर महायोगी – पूर्णचन्द पन्त 28
10. दुनिया में गुरु हजारों हैं – अवनीश भटनागर 32
11. सर्वदेवों की माता गऊ माता – डा० रेखा चतुर्वेदी 33
12. गुरु के सम हरि को न निहारूँ – डा० रुद्रदत्त चतुर्वेदी 36
13. शरीर है मरता, जीव अमर है..... – जगदीश बंसल राय 'अधम' 38
14. मौत अस्तित्व की सबसे बड़ी पहेली – दृष्टिकेतु सिंह पुण्ढीर 39

एक प्रति	: रु.	10.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	110.00
द्विवार्षिक	: रु.	200.00
आजीवन	: रु.	825.00

❑ विशेष लेख

श्रद्धा एवं सत्संग का वास्तविक स्वरूप

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अभी–अभी मैं महात्मा ज्ञानी राम से गणेधन की कथा सुन रहा था। जब कथा सुनाई जा रही थी, तो उस समय मेरे मन में भगवान के शब्द घूम रहे थे–**श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः** अर्थात् भगवान का रूप श्रद्धामय है, उसे मनुष्य जिस नाम और रूप से भजता है, ईश्वर उसको उसी नाम से मिल जाते हैं।

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्नाः' के अनुसार हर प्रणाली की मति में भेद रहता है। गुणों का तारतम्य हर जगह चलता रहता है। इसलिये मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा चिन्तन करता है उसे वैसी ही प्राप्ति होती है। गीता में भगवान् ने ज्ञान प्राप्ति के तीन साधन बताये हैं।

'श्रद्धावान्लभते ज्ञानम् तत्परः संयतेन्द्रियः।'

पहला साधन–श्रद्धावान होना ! श्रद्धालु व्यक्ति ज्ञान को पा जाता है, दूसरा तत्परता अर्थात् जो साधना में तत्पर रहता है, लगा रहा है। और तीसरा साधन है–**'संयतेन्द्रिय होना'**। ये तीन उपाय हैं–तीन साधन हैं जिनके द्वारा मनुष्य यथार्थता को पा जाया करता है। मैं इस व्याख्या में तुम्हें कुछ और भी बातें समझा देना चाहता हूँ। मैंने तुम्हें यह बताया था–**भवप्रत्ययो विदेह प्रकृति लयानाम्** अर्थात् जो विदेह देवता हैं और जो प्रकृतिलीन योगी हैं उनको जन्म से ही समाधि लगती है। दूसरे योगी होते हैं–उपाय प्रत्यय वाले उनके लिए सिद्धान्त है।

'श्रद्धावीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वकमितरेषाम्।'

अर्थात् जो योगाभ्यासी हैं–उपाय प्रत्यय वाले योगी है, उनके लिए श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा ये क्रम हैं। इसलिये इस साधना मार्ग में श्रद्धा का पहला स्थान है। अस्तु!

श्रीमद् भागवद् के एकादश स्कन्ध में भगवान् ने एक सिद्धान्त की बात कही है–

'न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टपूर्तिं न दक्षिणा।।
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमाः यमाः
यथावरुन्धे सत्यङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्।'

अर्थात् मुझे योग रिझा नहीं सकता, मैं न तो सांख्य सिद्धान्त से अथवा धर्म पालन से ही अथवा स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्टापूर्ति एवं दक्षिणा से ही वश में होता हूँ। मुझे व्रत, यज्ञ वेदाध्ययन, तीर्थ तथा यम–नियम भी रिझा नहीं सकते। किन्तु सर्वसंगों का हरण करने वाला सत्संग जिस प्रकार मुझे रिझा लेता है, उस प्रकार से दूसरे कोई उपाय मुझे रिझा

नहीं सकते। अब तुम कहोगे कि भगवान ने यहाँ पर कह दिया कि योग भी मुझे रिझा नहीं सकता उधर गीता में भगवान स्वयं योग की ही जगह-जगह प्रशंसा करते हैं।

तस्माद्योगी भवार्जुन ! अर्जुन तुम योगी बनो-'**तस्माद् सर्वेषु कालेषु योग युक्तो भवार्जुन**' ! 'अर्जुन तुम हर समय योग युक्त रहो।' **योगी परमस्थानं उपेति चाद्यम्** अध्ययन से, यज्ञ से, तप से, दान से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, उन सबको त्याग कर भी, योगी परम पुरुष को पा जाता है। इस प्रकार से गीता में भगवान् योग का ही गुणगान करते हैं। और अर्जुन को योगी बनने की आज्ञा देते हैं। इस बात को तुम नहीं समझोगे। देखो ! योग के दो रूपक हैं एक है **सिद्धयोग**, दूसरा है, **साधन योग**। सिद्धयोग में गुरुदेव शिष्य को अपनी शरण में लेकर शक्तिपात से उसकी शक्ति जागृत कर देते हैं और उसे तत्काल ही ऊँची भूमिकायें प्रदान कर देते हैं। साधन योग में साधक-साधना के बल से, धीरे-धीरे आगे बढ़ता है।

नेति, धौति आदि षट्कर्म-प्राणायाम तथा तप स्वाध्याय ये सब साधन योग हैं। यहाँ पर भगवान् '**न रोधयति मां योगो**' में साधन योग की ओर इशारा करके कहते हैं कि इन साधनों से मैं वश में नहीं होता हूँ। वैसे साधन योग में भी यदि कोई स्वस्तिकासान, पद्मासन में बैठने का अभ्यासी बन जाये और "**समकाय शिरोग्रीवम्**" के तरीके से बैठने की आदत डाल ले, तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि उसकी सुषुम्ना चल पड़ेगी और यदि वह भजनानन्दी है तो उसका ध्यान लगने लग जायेगा। सुषुम्ना के अन्दर भी तीन नाड़ियाँ हैं। बाईं ओर वज्रा और दाईं ओर चित्रिणी हैं। बीच में ब्रह्मनाड़ी है। यदि प्राण वज्रा को स्पर्श करे, तो साधक जड़वत बैठा रहता है और यदि चित्रिणी को छूने लगे तो उसे दर्शन आदि होते हैं। ब्रह्म नाड़ी में गति होने पर वह शुद्ध प्रकाश की ओर बढ़ जाता है-निर्गुण चैतन्य की ओर ब्रह्म ज्ञान की ओर। मेरे कहने का अभिप्राय यह कि कोई सीधा बैठने का ही अभ्यास कर ले तो वह योगी बन जाता है। **प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य** प्राणायाम का अभ्यास करता है तो उसका भी चित्त निर्मल हो जाता है। जिस प्रकार से अग्नि में डाल देने पर धातुओं के मल जल जाते हैं, उसी प्रकार से प्राणायाम से इन्द्रियों के मल जल जाते हैं। प्राणायाम का फल है- "**ततः क्षीयते प्रकाशावरणाम्**" अर्थात् प्रकाश का जो आवरण है वह प्राणायाम से नष्ट हो जाता है। साधन योग में तो साधक को अभ्यास करते करते अपने परिणाम तक पहुँचना पड़ता है। इसलिये '**न रोधयति मां योगः**' इस पद में भगवान् ने साधन योग की ओर संकेत करके, कह दिया है कि मैं योग क्रियाओं से वश में नहीं होता हूँ। यम नियम पालन एवं स्वाध्याय तपादि भी मुझे नहीं रिझा पाते, जैसे सब कुसंगों का हरण करने वाला सत्संग मुझे रिझा लेता है। तुम लोग सत्संग का अर्थ क्या समझते हो ? सत्संग का अर्थ यह नहीं है कि थोड़ी देर तुम लोग मिल गये और भजन-कीर्तन आदि बोल लिये। सत्संग का सही अर्थ यह नहीं। '**सताम् महताम् सिद्धानाम् संगः सत्संगः**।' अर्थात् सिद्धों का, महापुरुषों का जो संग है, वह सत्संग कहलाता है। सिद्धसंगति से सब कुछ मिल जाता है यदि सिद्ध आँख से देख भी लेता है तो शक्तिपात हो जाता है। किसी के प्रति मन में विचार बन जाये, इसका ऐसा हो जाये,

तो शक्तिपात हो जाता है और यदि वाणी से कह दे–**'तस्माद् योगी भव।'** तू योगी हो जा। तो वह योगी बन जाता है तो इस प्रकार का सत्संग यदि किसी को प्राप्त हो जाये तो फिर वह व्यक्ति मुझे प्रसन्न कर लेता है। अन्य–अन्य योग के साधन जैसे–तप तीर्थ आदि से मैं जल्दी प्राप्त नहीं होता।

अभी तुम सब गणेश्वन की कथा सुन रहे थे। कथा को सुनते हुये मुझे भी श्रद्धा के रूप में ख्याल आ रहा था। परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जिसकी जैसी श्रद्धा बन जाती है परमात्मा उसके लिये वैसे ही बन जाता है। मुझे अपने एक बच्चे की याद आई है, वह मैं तुम्हारे सामने कह दूँ। पाँच दस वर्ष पहले पटना में वी. एन. सिन्हा की कोठी पर एक वकील मेरे पास आया करता था। बाद में वह महात्मा बन गया और अयोध्या में जाकर किसी वैरागी महात्मा से दीक्षा ले ली। वह भक्ति मार्ग में भगवान राम का भक्त बन गया। उसका एक बच्चा था, उसे वह यहाँ इलाहाबाद में ही हमारे पास छोड़ गया कि इसे आप अपने साथ रख लें। हमने उसे रख लिया। घर का नाम तो उसका कुछ और था किन्तु हमने उसका नाम योगानन्द रख लिया। उसमें भी भगवान् राम की भक्ति के संस्कार बने हुये थे। हमने उससे पूछा–रामजी कौन से लोक में रहते हैं ? वह कहने लगा–"गुरुजी ! रामजी तो सबसे ऊपर रहते हैं, उनसे बड़ा कोई नहीं है।" हमने कहा–"विष्णु जी से भी बड़े ?" वह कहने लगा–'विष्णु जी से तो बहुत बड़े।' हमने कहा–"कृष्णजी से भी बड़े ? कहने लगा–"वह कृष्ण जी से बड़े हैं।" मैंने कहा–"शंकर जी से"–"गुरुजी ! शंकर जी से तो वह बहुत बड़े हैं।" राम जी सबसे बड़े हैं और वह सबसे ऊपर रहते हैं। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु आदि तो पहुँच भी नहीं सकते। मैं उसकी बात सुनता रहा। वह मुझे प्यारा लगता रहा। मैंने कहा–"ठीक है भई ! राम जी सबसे बड़े हैं।" यह उस की श्रद्धा की बात थी।

एक बार हम अपने ऋषिकेश आश्रम में थे। वृन्दावन का हमारा एक बच्चा मृदुल गोस्वामी है। वह बिहारी जी के मन्दिर का पुजारी भी है, वह हमारे पास आ गया। बातचीत के प्रसंग में मेरे मुख से निकल गया–**"एते चांशकलाः पुंस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"** अर्थात् ये जितने अवतार हुये हैं, वे सब कलाधारी मानव थे। किन्तु कृष्ण स्वयं भगवान हैं ही हैं। फिर मुझसे कहने लगा गुरु जी ! एक बात और भी मैं आपको बता दूँ मैंने कहा–" अच्छा ! बता, क्या बात है ?" वह कहने लगा, जो कृष्ण जी थे उनसे मथुरा वाले कृष्ण जी बड़े थे और मथुरा वाले कृष्ण जी से वृन्दावन वाले बड़े थे और वृन्दावन वालों से भी बिहारी जी बड़े हैं। मैंने पूछा–बिहारी जी से आगे और कोई बड़ा ? वह कहने लगा–नहीं ! बिहारी जी से कोई बड़ा नहीं है। वही सबसे बड़े हैं। वह बिहारी जी का पुजारी है और भक्त है। इसलिये उसकी दृष्टि में बिहारी जी ही सबसे बड़े हैं। मुझे उसकी ये बातें बड़ी प्यारी लगीं। मैंने सोचा–कितनी निष्ठा है इसकी बिहारी जी में।

एक बार हम माठमाण्डू गये। वहाँ पर थोड़ी दूरी पर गुह्येश्वरी मन्दिर है। वहीं से प्रभु जी हिमालय गये थे। श्री प्रभु जी वहाँ बैठे हुये थे। महाप्रभु जी आये और उनको अपने साथ आकाश मार्ग से अपने स्थान पर ले गये। हम गुह्येश्वरी मन्दिर देखने गये। मन्दिर के साथ में छोटी सी पहाड़ी है। उस समय घूमने फिरने की आदत थी ही। अब तो यह

शरीर गवाही नहीं देता, नहीं तो यहाँ इलाहाबाद में भी नित्य सात–आठ मील दूर जाकर शौचादि से निवृत्त होते थे। उस मन्दिर के साथ पहाड़ी की ओर हम आगे निकल गये। वहाँ जाकर घाटी में मुझे कुछ शोर सुनाई दिया, मैं उस घाटी के अन्दर चला गया। वहाँ जाकर मैंने देखा कुछ पहाड़ी लोग नाच रहे हैं उनमें कुछ स्त्रियाँ भी हैं। वे नाचते हुये कह रहे थे–"**चिन्चिडिंग चिन्चिडिंग।**" मैंने पूछा–"भाई ! यह चिन्चिडिंग क्या है ?" भाषा मेरी कोई नहीं समझता था। फिर एक आदमी मिला वह थोड़ा–थोड़ा हिन्दी बोल लेता था। वह मेरे पास आकर कहने लगा–"चिन्चिडिंग हमारा देवता है।" मैंने कहा–"यह कौन सा देवता है ? मैंने इस देवता का नाम आज तक कभी सुना नहीं है। वह कहने लगा चिन्चिडिंग तो दुनियाँ में सबसे बड़ा देवता है। उनसे बड़ा और कोई नहीं।' मैंने पूछा–"शंकर जी, कृष्ण जी से भी बड़े।" उसने कहा–"चिन्चिडिंग तो सबसे बड़ा देवता है, बाकी सब देवता उनसे छोटे हैं। इसलिये हम चिन्चिडिंग को जप रहे हैं।"

तब भी मेरे मन में आया–"**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।**" अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है उनको जो जिस रूप में चाहेगा वे वैसे ही बन जायेंगे। योग दर्शन में भगवान् पतंजलि जी ने जो योगाभ्यासी हैं उनके लिये उपाय प्रत्यय अर्थात् साधन योग–क्रिया योग का उपदेश किया है। साधन योग भी छोटी चीज नहीं है। यदि कोई ब्रह्मचर्यपूर्वक इनकी साधना करे तो सभी कुछ पा जाता है। लेकिन मनमाने ढंग से करने पर कुछ लाभ नहीं होता। अभी कुछ दिन पहले चण्डीगढ़ में किसी व्यक्ति ने योग दर्शन के 'भुवन ज्ञानम् सूर्ये संयमात्' के अनुसार सूर्य में त्राटक करना आरम्भ किया। संयम का अर्थ वह जानता नहीं था उसने नंगी आँखों से सूर्य पर त्राटक लगाया। परिणाम यह हुआ कि तीन दिन के अन्दर उसकी आँखों की रोशनी जाती रही। ऐसे लोगों के लिये तो उक्ति यह है "देखा देखी साधे योग। छीजे काया बाढ़े रोग।'

गुरु उपदिष्ट होकर साधना करने से ही सफलता मिलती है। यदि गुरुपदिष्ट होकर ठीक प्रकार से साधना करें तो योग की यह क्रिया ही पराकाष्ठा तक पहुँचा देती है। त्राटक क्रिया में काला बिन्दु बनाकर उस पर त्राटक का अभ्यास किया जाता है। वह काला बिन्दु त्राटक करते–करते सफेद बन जाता है अर्थात् प्रकाशमय हो जाता है। उस प्रकाश वाली आँखों को भीतर–बाहर जहाँ भी लगाओगे वहीं का सब दीखने लग जायेगा। उस प्रकाशयुक्त आँखों को भ्रूमध्य में स्थिर किया जाये तो फिर "**मूर्धज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्**" के अनुसार मूर्धा ज्योति में उस प्रकार को फैंक देने पर सिद्धों के दर्शन होने लगते हैं। सिद्धों के दर्शन अमोघ होते हैं। सिद्ध प्रसन्न होकर शक्तिपात कर देते हैं और इससे समाधि लग जाती है। लोग साधना करते नहीं हैं, बस चाहते हैं यूँ ही काम हो जाये। मेरे पास दिन भर में ऐसे कितने ही आदमी आते हैं। एक आदमी ने आज दिन में आकर मुझसे कहा कि–शक्तिपात कर दो। शक्तिपात कोई मजाक की चीज थोड़ी है। यूँ थोड़े ही शक्तिपात हो जाता है। तुम पहले मेहनत तो करो अपने को उसका अधिकारी तो बनाओ, तो फिर शक्तिपात करने वाले परमात्मा की शक्ति अपने आप मिल जायेगी।

साधक को अपने आप को पहले उत्तम अधिकारी बना लेना चाहिये। मृदु, मध्य एवं

अधिमात्र तीन प्रकार के अधिकारी होते हैं। जो सतोगुणी होते हैं, वे अधिमात्र श्रेणी का उत्तम अधिकारी होते हैं। रजोगुण वाला मध्यम तथा तमोगुण वाला मृदु अधिकारी अर्थात् निकृष्ट अधिकार होता है। उत्तम अधिकारी बन जाने पर भी **"स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारसेवितो दृढ़ भूमिः"** पतंजलि जी के इस सूत्र को हमेशा याद रखना चाहिये। जो जल्दबाजी में रहते हैं वह धोखा खा जाते हैं। इसलिये दीर्घकाल सेवित–लम्बे समय तक चार छः वर्ष तक किया जाये तत्पश्चात् नैरन्तर्य–निरन्तर अर्थात् लगातार। यह नहीं कि एक दिन कर लिया दो दिन छोड दिया। फिर एक दो दिन किया, फिर छोड़ दिया। ऐसा नहीं होना चाहिये। तीसरी बात है **"सत्कारासेवित"** सत्कार पूर्वक अभ्यास में लगा रहे। मन अत्यन्त चंचल है क्षण-क्षण में बदलता है। कभी सोचता है यह मन्त्र जपे, फिर कभी सोचता है, इस मन्त्र का जाप करे, कभी सोचता है ऐसे ध्यान करे, कभी सोचता है ऐसे ध्यान करें। इस प्रकार से दुविधा में पड़ा रहता है। इस दुविधा को दूर करने के लिये ही तो गुरुदेव की शरण लेना जरूरी हो जाता है। गुरुदेव की शरण मिल जाने के बाद जो भी रास्ता विधि वे बतायें उस पर ही चलना चाहिये। उनके दिये हुए मन्त्र को ही सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिये। उसी का जाप करना चाहिये। जिस इष्ट देव का ध्यान बताया गया हो उसकी का ध्यान करना चाहिये। अपने गुरुदेव में ही भक्ति व निष्ठा रखनी चाहिए।

"मन्नाथो त्रिजगन्नाथः मद्गुरुस्त्रिजगद्गुरुः" के अनुसार मेरे साथ ही तीन लोक के स्वामी है। मेरे गुरुदेव ही जगद्गुरु–सबके गुरु हैं। ऐसी भावनाओं से गुरुनिष्ठ रहे। मेरा साधना मार्ग ही सर्वोत्तम है। मेरा मन्त्र सबसे बड़ा मन्त्र है। इस प्रकार से सत्कारपूर्वक अपनी साधना में लगे रहने पर वह साधना दृढ़ भूमि वाली बन जाती है। हमारा जो मन्त्र है, जो मैं अपने बच्चों को देता हूँ, उसके विषय में अनुभवी सन्तों और योगियों का लेख है कि इसका साढ़े तीन वर्ष तक जो लगातार जाप कर लेता है, वह सिद्ध हो जाता है किन्तु इसके साथ–साथ कुछ और भी बातें हैं। साधक का पवित्र आचार–विचार का जीवन हो। इस प्रकार साधना करने से मनुष्य के अन्दर शक्ति का उत्थान होता चला जाता है। किन्तु हमारी इन्द्रियाँ शक्ति को क्षीण कर देती हैं जो भोग–विलासों में पड़ा रहता है, उसकी शक्ति **क्षीण** हो जाती है बहुत से लोग हमसे प्रश्न किया करते हैं कि शक्तिपात करने पर शक्ति **कायम** रहती है या चली जाती है, लोगों का ऐसा अनुभव है कि शक्तिपात होने पर शक्ति कुछ दिन चलती है और फिर क्षीण हो जाती है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। जो शक्ति जिसको दी जाती है, वह कायम रहती है। बशर्ते वह संयम से रहे–ब्रह्मचर्य से रहें। जिन साधकों ने पुराने समय में हमारे कन्ट्रोल में रह कर साधना की है, उनको पता है कि किस प्रकार से बहुत जल्दी ही उत्थान होता है। इस प्रकार से जो साधना करते हैं वे योगी और सिद्ध तक हो जाते हैं। हमारे कितने ही बच्चे जंगलों में कन्दराओं में बैठे हुये हैं। ऐसे ही साधकों में एक बच्चा कश्मीर में गुलमर्ग–खिलमर्ग की तरफ हमारे बनारस के बच्चे प्रमोद और उसके साथी को मिला था। उसने जय गुरु देव जी करते हुये कहा था कि मैं भी गुरुदेव का ही बच्चा हूँ और यहाँ पहाड़ पर साधना करता हूँ।

मैंने तुम्हें क्रिया योग के विषय में संकेत किया था। क्रिया योग ही साधन योग है।

साधन योग में साधक धीरे–धीरे **"श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा"** की सोपान पर बढ़ते हुये लक्ष्य की ओर जाता है। इसी के साथ में क्रिया योग का अभ्यास किया जाता है ताकि साधक समाधि तक पहुँच जाये। क्रियायोग में तीन बातें होती हैं–

'तपस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः' तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान को 'क्रिया योग' कहते हैं। उनमें सबसे पहला स्थान तप का। सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि द्वन्द्वों को सहन करके शरीर को साधना के अनुकूल बनाना तप कहलाता है।

मैंने तुम्हारे सामने कई बार अपने वृन्दावन के बचपन के साथी अगड़धत्ता की बात सुनाई है। वह उल्टी रीति का साधु था। सर्दियों में तो वह लंगोटी के अतिरिक्त कुछ नहीं पहनता था। किन्तु गर्मियों में जेठ के महीने में तीन कम्बल ओढ़ लेता था इनमें से एक तो सिर पर बाँध सा लेता था और दो वैसे ही ओढ़ लेता था। लोग उनसे कहते–"महाराज ! बहुत गर्मी है आप इन कम्बलों को उतार दें।", वह पहले तो कुछ बोलता ही नहीं था यदि बोलता तो कहता–"यदि तुम्हारा बाप ओढ़ता हो तो मैं उतार देता हूँ।" इस प्रकार से जवाब देता था। मैं उसकी इस बात को समझ गया था कि सर्दी गर्मी को सहन करने की दृष्टि से ही वह ऐसा किया करता था। प्राणायाम भी एक बहुत बड़ा तप है। हमने अपने बच्चे रघुनन्दन प्रसाद को घोर तप कराया था। उसने तीन महीने तक एक समय अल्पाहार करके तप किया। फिर अगले तीन महीने बेल के पत्ते खाकर तप करता रहा। फिर इसके बाद तीन महीने लस्सी (छाछ) पीकर तप करता रहा, साथ में योग ध्यान का क्रम तो चलता ही था। इस प्रकार साधना करने से उसको **"ऋतम्भरा प्रज्ञा"** की प्राप्ति हो गई थी।

सबसे बड़ा तप है इन्द्रिय निग्रह। मन तो क्षण–क्षण गिराने को तैयार रहता है इस पर कन्ट्रोल करना द्वन्द्व सहन है और यही तप है। यदि एक मनुष्य अपने आपको भोगों से निकल लेता है तो वह परम् तपस्वी है। तप का फल योग दर्शन में बताया है–**'कायेन्द्रियसिद्धिर शुद्धक्षयात्तपसः'** अर्थात् तप से अशुद्धि क्षय होने पर कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि मिलती है। कायिक सिद्धि–शरीर का अत्यन्त दृढ़ होना, निरोग एवं कान्तिमान होना है। ऐन्द्रिय सिद्धि से दूर–दूर की देखना, दूर की सुनना, दूर की गन्ध एवं रस का ग्रहण करना आदि आदि ताकतें आ जाती हैं। तप की साधना के साथ स्वाध्याय को बढ़ावे अर्थात् मन्त्र जप में लगे रहना चाहिये। इधर से तप चल रहा है और साथ–साथ जप भी चल रहा है इसका परिणाम होगा–**"स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः"** इस प्रकार तपयुक्त स्वाध्याय से इष्ट देव का दर्शन होता है। ऋषि, मुनि एवं सिद्ध लोग उसको दर्शन देते हैं और उसको वरदान आदि मिलता है। इस प्रकार तप–स्वाध्याय करते–करते साधक कुदरती ईश्वर प्रणिधान की ओर निकल जाता है ईश्वर प्राणिधान का अर्थ है आत्म समर्पण। यूँ तो हर व्यक्ति कह दिया करता है कि "मैंने तो अपना आपा सौंप दिया है, अब आप जानो।" वाणी से तो कह दिया; किन्तु वाणी से कह देने पर फिर भी अपनी इच्छाओं के अनुसार क्यों चलो ? जैसा मैं चाहूँ वैसा करो। यदि साधक अपने मन के अनुसार ही काम करता है, तो उसने अपने आप को सौंपा ही नहीं, काम तो अपने मन के अनुसार करता है और सौंपने का तो केवल

नाम लेता है। सीखने का अर्थ होता है–"**यद् करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।**" जो खाते हो, जो करते हो, जो देते हो, जो हवन करते हो, जो तपस्या करते हो वह सब इष्ट के लिये होना चाहिये। उसकी एक एक हरकत अपने इष्ट के लिये होती है। इस प्रकार से तप होता रहे। स्वाध्याय से सिद्धों का दर्शन एवं आशीर्वाद मिल गया इन दो ताकतों के मिल जाने पर ईश्वर प्रणिधान अर्थात् आत्म निवेदन अपने आप हो जायेगा जिस का फल है समाधि। "**समाधिसिद्धिश्वर प्रणिधानात्**" अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्धि मिलती है यह योग दर्शन का सूत्र है। अस्तु बात श्रद्धा से प्रारम्भ हुई थी। जो योग मार्ग में चलना चाहते हैं उनके लिये श्रद्धा सबसे पहली और जरूरी चीज है।

"**श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः**" चित्त की प्रसन्नता का नाम श्रद्धा है श्रद्धा योगी की माँ की तरह रक्षा करती है, जिस प्रकार माँ अपने बच्चे की हर प्रकार से रक्षा करती है उसी प्रकार से श्रद्धा भी योगी की रक्षा किया करती है। श्रद्धा से क्या मिलता है ? इस पर व्यास जी भाष्य में कहते हैं–'**श्रद्दधानस्य विवेकार्थिनो वीर्यमुपजायते**' श्रद्धा के आने के बाद साधक के मन में साधना के प्रति उत्साह बढ़ जाता है–दृढ़ता आ जाती है। '**समुपजात वीर्यस्य स्मृतिरुपतिष्ठते**' और जब दृढ़ता आ जाती है, तो साधक की स्मृति कायम रहती है और स्मृति के उपस्थान के चित्त स्वतः ही समाहित होने लगता है, और इस प्रकार समाहित चित्त से प्रज्ञाविवेक–अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति हो जाती है। फिर हर वस्तु को योगी यथार्थता से जान लेता है। श्रद्धा का इतना बड़ा परिणाम निकलता है। इसलिये तुम सब श्रद्धायुक्त होकर डटकर साधना में लग जाओ। अरे ! मेरे से क्या शक्तिपात लोगे। वे सर्वशक्तिमान प्रभु जी नैपाल में बैठे–बैठे अपने बच्चों पर स्वतः शक्तिपात करते रहते हैं। उनके स्वरूप के सामने बैठकर ध्यान करने से कुदरती शक्तिपात होता है।

आज एक पुराना सत्संगी मिला था वह कह रहा था आप के सिद्ध गुफा में बैठने पर मुझमें अपने आप नाद प्रकट हो गया। वह नादानुसंधान का अभ्यासी था। उसे नाद सुनाई दे गया होगा। श्री प्रभु जी गुफा में रहा करते थे। उनके दिव्य परमाणुओं से वह परिपूरित है। इसलिये जो वहाँ जाकर ध्यान में बैठता है, उसका ध्यान अवश्य लगता है। मेरे मन में 'गपोचन' की कथा को सुनकर '**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः**' ये भगवान के वचन बराबर घूमते रहे। कोई उसे गोपाल कहे, राम कहे, अल्लाहताला कहे, क्रिश्चिडिंग कहे कुछ भी नाम रूप से भगवान भक्त की श्रद्धानुसार उसी रूप में प्राप्त होते हैं। श्रद्धा ही मनुष्य को योगी बनाती है और परमात्मा तक पहुँचा देती है। इसलिये तुम सब संयतेन्द्रिय होकर, श्रद्धायुक्त होकर अपने को साधना में लगाओ। यह प्रयाग क्षेत्र अक्षय क्षेत्र है यहाँ पर किया गया जप तप अनन्त गुणा फल देने वाला होता है। कल्याण धन श्री प्रभु जी के चरणों में समर्पण रखते हुये अपनी साधना को बढ़ाओगे, कल्याण का रास्ता खुलता चला जायेगा।

* * *

• सम्पादकीय

योगीजन ही दिव्य दृष्टि से परमात्व-तत्व को देख पाते हैं

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

परमात्व–तत्व अथवा आत्मतत्व सदा, सर्वदा सर्वत्र विद्यमान है। तथापि चर्म चक्षु से यह तत्व नहीं देखा जा सकता है क्योंकि यह चर्म चक्षुओं से देखा ही नहीं जा सकता है। चर्म चक्षु की एक अपनी सीमा है। इसके गोलक विकारयुक्त हो जाये तो भी हम वस्तुओं को नहीं देख पाते है तथा देखने के लिये भौतिक प्रकाश की आवश्यकता होती है। अत्यधिक प्रकाश में भी यह आँखें देखने का कार्य नहीं कर सकती है यदि कोई देखने का प्रयास भी करे तो अत्यधिक प्रकाश से आँखें अन्धी भी हो जाया करती हैं। अत्यधिक प्रकाश आँखों की शक्ति को खींच लेता है परिणामस्वरूप व्यक्ति अन्धा हो जाया करता है। भौतिक जगत में भी सूक्ष्म वस्तुओं को देखने के लिये यन्त्र की जरूरत होती है। आत्म तत्व को सूक्ष्मातिसूक्ष्म कहा गया है। इससे सूक्ष्म कोई वस्तु नहीं है। गीता में भगवान् ने कहा है–स्थूल शरीर से इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं, इन्द्रियों से सूक्ष्म व परे मन है, मन से बुद्धि सूक्ष्म है और बुद्धि से भी जो सूक्ष्म है उसे आत्मा कहते हैं। उपनिषदों मे भी **'सा काष्ठा सा परा गतिः'** कहकर आत्मा की सूक्ष्मता एवं व्यापकता को प्रदर्शित किया गया है। कठोपनिषद् में भी यह बताया है कि सामान्य मनुष्य आत्मतत्व को नहीं जान सकता क्योंकि ब्रह्माजी ने मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों को बाहर की ओर देखने वाला बनाया है इसलिये मनुष्य की वृत्ति बहिर्मुखी होती है। कोई धीर योगी पुरुष ही अपनी ज्ञानेन्द्रियों को मन–बुद्धि सहित अन्तर्मुखी करके समाधि के अभ्यास से अन्ततः आत्म तत्व का साक्षात्कार कर पाता है। उस परम तत्व का ज्ञान, ज्ञान चक्षु से ही होता है इस बात को स्थल–स्थल पर श्री मद्भगवद्गीता में बतलाया गया है। अध्याय पन्द्रह का यह श्लोक द्रष्टव्य है–

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानम् वा गुणान्वितम्
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः।

अर्थात् शरीर छोड़ते हुये, विषयों का उपभोग करते हुये तीनों गुणों से युक्त हुये इस आत्मा को मूढ़ जन नहीं देख सकते हैं किन्तु ज्ञान चक्षु वाले इसे देख लिया करते हैं। इसी प्रकार से तेरहवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में भगवान् कहते हैं–क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को

प्रकृति एवं मोक्ष के स्वरूप को जो पुरुष ज्ञान चक्षु से तत्व से जानते हैं वे परब्रह्म परमात्मा को पा जाते हैं। इस प्रकार से निष्कर्ष यह निकला कि परम तत्व का साक्षात्कार व दर्शन दिव्य दृष्टि से ही हो सकता है। दिव्य दृष्टि को ही ज्ञान चक्षु, दिव्य नेत्र प्रज्ञानेत्र (मन की आँख) योग दृष्टि आदि-आदि कई नामों से शास्त्रों में वर्णित किया गया है। इस दिव्य दृष्टि का उन्मीलन कैसे हो, इसके कई उपाय हैं। महायोगेश्वरों के शक्तिपात के फलस्वरूप दिव्य-दृष्टि मिल जाती है। अर्जुन पर शक्तिपात करते हुये आनन्दकन्द श्री योग योगेश्वर कृष्ण चन्द्र जी ने कहा-**दिव्यं ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमैश्वरम्'** अर्थात् हे अर्जुन ! मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ इससे तुम मेरे दिव्य स्वरूप को देखोगे। इस प्रकार भगवान् ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि दी। महर्षि व्यासदेव जी ने यह दिव्य दृष्टि संजय को प्रदान की जिससे संजय भगवान् के विराट स्वरूप को देख पाया। इस प्रकार की योग दृष्टि अस्थायी रूप से मिलती है क्योंकि यह तो किसी की कृपा पूर्वक मिली हुई होती है जो बाद में नहीं रहती है। इस प्रकार से भगवान् की कृपा से या सिद्ध महर्षि की कृपा से दिव्य दृष्टि मिला करती है।

दिव्य दृष्टि को प्राप्त करने का दूसरा उपाय है साधन योग। इस पद्धति में योग साधक धीरे-धीरे अपने मन को अन्तर्मुखी बनाता हुआ साधनारत रहता है जिससे कालान्तर में उसे दिव्य दृष्टि मिल जाती है। सम्पूर्ण ज्ञान का अधिष्ठान आत्मा है। अष्टांग योग के अन्तर्गत धारणा, ध्यान और समाधि के अभ्यास के द्वारा रजोगुण और तमोगुण के क्षय हो जाने पर अन्तर्ज्ञान प्रकट होने लगता है। ध्यानयोग की अवस्था में साधना का मन पूर्ण चेतनायुक्त रहता है। संयम की उपलब्धि हो जाने पर साधक जिस-जिस भी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है उसे उस वस्तु का ज्ञान हो जाता है। संयम से ही ऋतम्भरा प्रज्ञा या विवेक ख्याति मिलती है। इस ख्याति के प्राप्त हो जाने पर कोई भी संशय नहीं रहता, कोई भी ज्ञान अज्ञेय नहीं रहता। इसीलिये कहा जाता है **'यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातम् भवति'** अर्थात् जिस ज्ञान के प्राप्त कर लेने के बाद संसार की व्यक्ताव्यक्त समस्त वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है वह योग विद्या ही है। यौगिक साधनाओं में प्राणायाम की साधना भी परमोत्कृष्ट साधना है। इससे प्रकाशावरण का क्षय होता है और दिव्य दृष्टि मिलती है। अजपा साधना भी प्राण साधना ही है जो कुण्डलिनी जागरण में बहुत सहायक साधना है। यद्यपि पातञ्जल दर्शन में कहीं पर भी कुण्डलिनी का जिक्र नहीं आया है किन्तु बड़े-बड़े अनुभवी योगियों ने कुण्डलिनी जागरण के महत्व को माना है और इस विषय में बहुत कुछ लिखा है।

इसके जाग्रत हो जाने पर साधक को स्वतः ही दिव्य दृष्टि मिल जाती है। अजपा

साधना भी वेदमूलक साधना है। उपनिषदों में इसका वर्णन आया है। बड़े-बड़े सिद्धयोगियों ने इस मार्ग पर चलकर पूर्णता पाई है। यह मार्ग गुरुगम्य मार्ग है। दिव्य दृष्टि की प्राप्ति के साधनों में यह सर्वोत्तम व निरापद मार्ग है। इसके निरन्तर अभ्यास से अन्तर्ज्योति प्रकट होती है।

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी' अजपा साधना योगियों को मुक्ति प्रदान करने वाली साधना है। अजपा के दो भेद शास्त्रों में बताये हैं--एक प्रकट और दूसरा गुप्त। प्रकट उसे कहते हैं जिसका सदा भावयुक्त जप किया जाता है और गुप्त उसे कहते हैं जिसका केवल ध्यान मात्र किया जाता है। हंस उपनिषद में इसका फल बताया है--

हंसो नादे लीनो भवति।
सदातुर्यातीतमुन्मन जपोपसंहारमित्यभिधीयते।'

अर्थात् अभ्यास करते-करते जिस क्षण हंस मंत्र अथवा अजपा मंत्र प्रणव ध्वनि में लयता को प्राप्त हो जाता है उसी क्षण साधक को तुरीयातीत उन्मनी अवस्था का लाभ होता है। तब जप बन्द हो जाता है और इसी का नाम अजपा का उपसंहार है। भूत शुद्धि तंत्र नामक ग्रन्थ के प्रथम पटल में भगवान् शिव पार्वती को इसका उपदेश करते हुये कहते हैं--

संगमे परशिवे कृत्वा आनन्दमुपजायते।
तेनानन्देन देवेशि ! स्नायाज्जीवमनाहते।
ततस्तु परमेशानि अजपांप्राणरूपिणीम्
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा भूतशुद्धिं समाचरेत्।

भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं कि देवी ! गुरुपदिष्ट मार्ग से अजपा का अभ्यास करने से देह मध्य में परशिव और पराम्बा का संयोग होता है और इस संयोग मात्र से ही आनन्द की उत्पत्ति होती है जिसे जीव अनाहत पदम नाम से पुण्य तीर्थ में स्नान करता है। इसके अनन्तर हे पार्वती ! प्राण स्वरूप अजपा मंत्र का एक सौ आठ बार जाप करके भूत शुद्धि करे, अर्थात् गुरुपदिष्ट मार्ग से पृथ्वी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को प्रकृति में, और प्रकृति को पुरुष (आत्मा) में लय करके पुनः आवर्तन करना भूत शुद्धि है।" अजपा को शिव शक्ति मन्त्र भी कहते हैं। अकार को प्राण और सकार को जीव कहते हैं। इसी कारण से इस मन्त्र को जीव मन्त्र कहते हैं। इस मन्त्र में केवल धारणा मात्र की जाती है इसका जप नहीं करना होता है इसीलिये इसका नाम अजपा है। इस मन्त्र को संकोचात्मक अकार को शिव तथा विस्तारात्मक सकार को शक्ति कहते हैं। संकोच एवं विस्तार की प्रक्रिया को सिद्ध गुरु से उपदेशित

होकर ही समझना चाहिये और निरन्तर उठते, बैठते, चलते, फिरते अभ्यास करना चाहिये। एक आसन में बैठकर अभ्यास किया जाये तो मन की एकाग्रता को अधिक प्रदान करता है।

भगवान् शिव कहते हैं इस अजपा विद्या तत्त्व को अदीक्षित व्यक्ति के सन्मुख प्रकट नहीं करना चाहिये। यह विद्या सदैव मेरे हृदय कमल के मध्य में स्थित रहती है। समस्त नर नारियों के हृदय रूपी कोटर में हंस पक्षी (अजपा विद्या) निवास करता है, अजपा साधना प्राण और मन की संयुक्त साधना है जो गुरुगम्य है। इसके निरन्तर अभ्यास से ज्योति प्रकट होती है। गुरुदेव भगवान् कहा करते थे—यदि सद्गुरु के नियन्त्रण में रहकर संयमित जीवन होकर छः माह लगातार इसकी साधना की जाये तो सिद्धियाँ स्वयमेव प्रकट होने लगती हैं और साधक समाहितात्मा बन जाया करता है। अनाहत नाद भी एकाग्रता व समाधि प्राप्ति का मुख्य साधन है **'नास्ति नाद सदृशोलयः'** अर्थात् अनाहत के समान लयता को देने वाला दूसरा साधन नहीं है।

ध्यानबिन्दूपनिषद् में अनाहत का फल दिया है—

अनाहतं च यच्छब्दं तस्य शब्दस्य तत्परम
तत्परं विन्दते यस्तु स योगी छिन्नसंशयः।

अनाहत शब्द के शेष का जो सूक्ष्म अंश है वही प्रणव है। जो योगी उस सूक्ष्म ध्वनि को प्राप्त कर लेता है अर्थात् उस सूक्ष्म ध्वनि में अपने मन को लय करने में समर्थ हो जाता है उसे किसी भी विषय में संदेह नहीं रह जाता है। एक प्रकार से उसे दिव्य दृष्टि योग दृष्टि मिल जाती है। मूलाधार में ही अनाहत की स्फुरणा रहती है। अजपा साधना में इसी अनाहत को क्रमशः स्फुरसर स्पन्दित होता हुआ अनुभव किया जाता है।

यह अनाहत शब्द ही अन्तर्प्रकाश को देने वाला होता है। प्रकाश ही ज्योति है और इसी ज्योति में सभी सूक्ष्म तत्वों का साक्षात्कार होता चला जाता है। समाधि प्राप्ति का साधन अनाहत नाद है। समाधि की पराकाष्ठा संयम कहलाती है। संयमसिद्धि ही दिव्य दृष्टि है—प्रज्ञा विवेक है। संयम सिद्धि अध्यात्मिक ज्ञान का मूलाधार है। इसी से योगी को पुरुष ज्ञान (आत्मज्ञान) होता है तभी योगी सर्वज्ञ, सर्वज्ञातृत्व एवं सर्व भावाधिष्ठातृत्व जैसी महासिद्धियों का स्वामी बन जाता है। और सृष्टि के आर—पार उस परम—पुरुष का नित्य ज्ञान रहता है। ऐसा योगी ब्रह्मयोग युक्तात्मा होकर विचरण करता है।

***

"सद्गुरु-भगवान ही योग के प्रणेता"

—वेदव्रत द्विवेदी, उमापुर

अनादि काल से, अनादि महासिद्ध योग योगेश्वर, परम पिता परमेश्वर, जिनके आँचल में हम सभी भक्त निवास कर रहे हैं यह हमारा ब्रह्माण्ड ही उनकी रचना है। अपनी दिव्य योग शक्ति द्वारा इस जगत को परम कल्याण का मार्ग बताते व दर्शाते आ रहे हैं।

उनकी योग शक्ति की कथाओं से भारत के अनेकों धर्म ग्रन्थ भरे हुए हैं। योग योगेश्वर आनन्दकन्द श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा हो रही योग शक्ति की अनेकों चमत्कारी लीलाओं का विशद् वर्णन मुझ जैसे पतित, अज्ञानी से दूर की बात है तथा लेखनी से परे है। अकिंचन एवं मन्दमति द्वारा वर्णन करना असम्भव है। कितनी ही विलक्षण लीलायें, उन करुणा सागर की कृपा प्रसाद से घटित होती देखी गई हैं।

जहाँ तक योग की बात आती है, सारा योग अर्थात् सम्पूर्ण योग श्री सद्गुरु देव जी के अलभ्य कमल रूपी चरणों से निकल रही है। परन्तु दुर्भाग्यवश मेरा व्यथित तथा बोझिल मन उस अलभ्य चरणों में सराबोर होकर योग रूपी गंगा में स्नान ही नहीं कर पाता इसका प्रमुख कारण श्रद्धा की कमी का होना है। सद्गुरुदेव भगवान, हमारे और आपके आराध्यदेव हैं, जिनकी आराधना मन, कर्म और वचन तथा हृदय के कपट भाव को त्यागकर, प्रेम के आँसुओं से एवं करुण पुकार तथा ईश्वरोन्मुखी होकर करे तो सच्चे अर्थों में वही भक्ति है।

गुरु भक्ति वह ज्ञान गंगा है, जहाँ से, विशुद्ध परम ब्रह्म का स्थान है। सब तीर्थों का जल सद्गुरुदेव जी के चरणों में है, और सभी तीर्थों का फल सद्गुरु देव भगवान की प्रसन्नता है। और यही प्रसन्नता जब सद्गुरुदेव के चरण कमलों में विनम्रता तथा भावुकता को, माल्यार्पण के रूप में, सद्गुरु देव भगवान को अपर्ण कर दोगे जहाँ से फिर कुविचारों का अन्त हो जाता है।

प्रतिदिन, प्रतिक्षण हम ठगे जा रहे हैं, ठगने वाला और कोई दूसरा नहीं, अपितु वह तो हमारी इन्द्रियाँ हैं। जिसके गुलाम है, बल्कि इन्द्रियों को हमें गुलाम बनाना चाहिए। जब तक हम इन इन्द्रियों के मकड़जाल से निकलकर अपने, निज स्वरूप को पहचान पाने की शक्ति नहीं आ जाती तब तक उस अलभ्य, विशुद्ध सद्गुरुदेव भगवान से हजारों मील, करोड़ों कोस दूर ही नहीं अपितु हम उस मृग के समान हैं, जो मृगा, अपने अन्दर कस्तूरी को छिपाये कुलाचें भर रही है, लेकिन अज्ञानतावश उसे ही नहीं पता रहता कि, वह तो हमारे अन्दर ही है, वह जंगलों में भटकती फिरती रहती है, अन्ततोगत्वा प्यास और भूख से व्याकुल (मृग) तड़प कर अपनी जान (प्राण) गवां बैठती है।

इस तरह परमात्मा है। जब तक आत्मा के बारे में अनुभूतियाँ जारी नहीं हो जाती तब तक परमात्मा का साक्षात्कार कर पाना मुश्किल ही नहीं असम्भव है।

देखो ! प्रत्येक मानव ईश्वर की अपनी सन्तानें हैं, और उनका भरण–पोषण का कर्तव्य कौन कर रहा है ? इसका सहज और सीधा सा उत्तर है--परम् पिता परमेश्वर जो सारे सृष्टि का रचयिता है। रचनाकार स्वयं स्वभू है, वह भी कर्मयोगी ही है, उपनिषद्, पुराण, गीता, रामायण, बाइबिल, कुरान, गुरुग्रन्थ, इत्यादि धार्मिक पुस्तकों में, भगवान राम से लेकर जितने भी अवतार हुए हैं वह सभी योगावतार ही हुए, प्रसिद्ध पवन सुत बलिष्ठ अतुलित योगी हनुमान जी भी "कर्मयोगी" भगवान शिव के ही अवतार हैं। जिनका ग्यारहवां रुद्रावतार माना जाता है, और सभी सिद्ध सिद्धेश्वर सद्गुरु का अवतार हैं। महर्षि नारद पूर्ण सिद्धेश्वर नहीं थे, क्योंकि मोह के चलते ही "नारद जी" को मोह हो गया, यहीं से पतन का रास्ता प्रारम्भ हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में लिखा है–

'मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।'

अर्थात् सारे अज्ञानता की जड़ मोह ही है यदि संसार में रहना वाला संसारी मानव संसारिकता में पड जाता है तो विषय के भोगों में रहकर वासना का शिकारी–विकारी में रहते हुए विकारी हो जाता है। उसे अविकारी होकर रहना चाहिए। अगानीय, बनकर तथा संसार में रहते हुए प्रतिक्षण नाशवान संसार से विमुख होना पड़ेगा फिर संसार से विमुख होने के बाद अर्न्तःमुखी अन्तर्यामी ईश्वर से जुड़ता चला जायेगा तभी एकाकार तद्रूप होकर परमात्मा के करीब पहुँचता चला जायेगा।

जरा एकान्त स्थान में बैठकर, प्रभु चिन्तन, श्री गुरुदेव भगवान के चरणों का आलम्ब (सहारा) लेकर तो देखो वह परम पिता के प्रश्नों का उत्तर अन्तरआत्मा की करुणा पुकार से उलझे हुए अनगिनत सवालों का उत्तर स्वयं मिलता चला जायेगा। विवेकशील व्यक्ति के लिए विषाद भी एक योग ही है। जो हृदय की मानवीय पीड़ा एवं कुचक्रों से व्यथित भक्त अर्जुन की तरह अपने प्रश्नों का हल ढूढ सके। और वह माध्यम कैसा होना चाहिए (भगवान् योगेश्वर श्रीकृष्ण) जैसा भक्तवर अर्जुन रणभूमि में जाकर कायरता तथा दुर्बलता से ग्रसित होकर उसे सारी जनता को देखते हुए मोह उत्पन्न हो गया।

यही मोह था जिसे भगवान श्री कृष्ण ने कहा अर्जुन ! तू युद्ध कर।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

या तो युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा संग्राम में जीतकर पृथ्वी का राज्य भोगेगा। इस कारण हे अर्जुन ! तू युद्ध के लिए निश्चय करके खड़ा हो जा। (गीता २/३७)

भगवान ने गीता में मूल रूप से चार बातें बताई है–

(१) **पहला त्याग** :– निषिद्ध कर्मों का सर्वथा त्याग

(२) **तृष्णा का सर्वथा त्याग** :– मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, स्त्री, पुरुष, पुत्र, धनादि का त्याग

(३) **कामनाओं का त्याग** :– सद्गुरु की भक्ति करना, इष्टदेव की भक्ति करना, भगवान की भक्ति में बाधक समझकर किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिए न तो भगवान् से प्रार्थना करना और न मन में इच्छा रखना।

"सकल कामना हीन से, रामभगति रस लीन।।"

सब प्रकार की कामनाओं का परित्याग करना ही सच्ची भक्ति है। ठीक इसके विपरीत हम इच्छाओं को समूह सहित नष्ट नहीं करते, तो मुझे दुःख का अनुभव प्राप्त होने लगता है, सुख और दुःख विचारों की कल्पना मात्र है और इसी के चलते संस्कार के बीज पड़ने लगते हैं, जो आगे चलकर प्रारब्ध भोगों को जीव प्राप्त कर भोग योनि में आ जाता है।

कर्मों की गति न्यारी होती है। चाहे जिस प्रकार के हम कर्म करते हों अच्छा हो या फिर बुरा प्रत्येक किये हुए कर्मों का लेखा–जोखा बनकर सामने आ जाता है।

***

भजन

प्रेषक–भूपेन्द्र 'अंकुश', जलेसर

जो बन्दे तेरे गुरु रजामन्द होंगे।
भला होगा अरु तेरे आनन्द होंगे।।
जो तूने लगाये हैं बन्धन स्वयम् में
वो कमजोर, ढीले, सभी फन्द होंगे।। १।।
दम्भी घमण्डी विचारों के दानव
रे ! बनकर अनाड़ी नजरबन्द होंगे।। २।।
चेहरा छुपाकर अँधेरा भगेगा
चारों तरफ भास्कर चन्द होंगे।। ३।।
चहकती महकती रहे तेरी दुनियाँ
जिह्वा पर सुर-ताल-लय-छन्द होंगे।। ४।।
गुरु मन्त्र का जाप हरदम चलेगा
अन्तःकरण के खतम द्वन्द्व होंगे।। ५।।

योगाभ्यासी साधक
श्री आत्मा प्रसाद जी 'एडवोकेट'

—केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

वाराणसी जनपद की पिन्द्रा तहसील के हमारे एक वरिष्ठ गुरुभाई बाबू सत्यनारायण सिंह जी थे। श्री आराध्यदेव के चरण-कमलों में उनकी अनन्य श्रद्धा थी। बजरंग बली जिस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम की पहरेदारी को ही अपना परम कर्तव्य समझते थे, ठीक उसी प्रकार बाबू सत्यनारायण सिंह जी भी, ज्योंही श्री गुरुदेव के चरण-कमलों को प्रणाम निवेदित करते, करुण-कारुण श्री गुरुदेव जी महाराज उन्हें यह कहते हुए अपने गुरुभवन के दरवाजे की पहरेदारी सौंप देते कि लल्ला! तुम आ गये, बहुत अच्छा किया, मुझे बिल्कुल ही आराम नहीं मिल पा रहा था। अब तुम अपनी ड्यूटी सम्भालो एवं जब मैं आराम करूँ किसी को अन्दर मत आने देना। बाबू सत्यनारायण जी ने जीवन पर्यन्त श्री गुरुदेव की इस आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। बाबू सत्यनारायण सिंह जी को अब इस संसार से बिदा हुए लगभग पन्द्रह साल से अधिक हो रहा है। बाबू सत्यनारायण सिंह जी सन् सत्तर के दशक में अपने गृहस्थी (खेती-बाड़ी) के मुकदमें जो उनको अपने पट्टिदारों से लड़ने पड़ते थे काफी परेशान और निराश हो गये एवं अर्थाभाव के कारण विशेष कष्ट एवं अपमान झेलना पड़ा तो उन्होंने अपने हितैषियों एवं मित्रों से कहा कि किसी ऐसे वकील को आप लोग बतलाइये जो मुकदमें में हमें जीत दिला सके। कारण यह था कि उनकी बात सत्य एवं यथार्थ होते हुए भी वकील द्वारा अच्छी तरह प्रस्तुत न करने के कारण मुकदमा हारना पड़ता था। उस समय अर्थात् सन् सत्तर के दशक में ही हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री आत्माप्रसाद जी एडवोकेट वाराणसी कचहरी एवं कमीश्नरी में माल एवं दीवानी के बेजोड़ वकील हो गये थे। श्री सत्यनारायण सिंह जी के शुभेच्छुओं ने कहा कि आप श्री आत्माप्रसाद जी को ही अपना वकील बना लीजिए। श्री सत्यनारायण जी ने आराध्यदेव जी की आज्ञा लेकर, आदरणीय भाई आत्मा जी को अपना वकील बनाया। यद्यपि आपकी गिनती बहुत मंहगे वकीलों में थी।

एक तो टाप क्लास के एडवोकेट एवं ऊपर से सिद्धों के सरताज योगेश्वर श्री सद्गुरुदेव जी महाराज की कृपा, क्या मजाल कि फैसला श्री सत्यनारायण सिंह जी के खिलाफ जाए। श्री सत्यनारायण सिंह की विजय हुई एवं विरोधी पार्टी से इन्हें हरजाना भी हजारों रुपयों में मिला। उस समय हजार रुपये की मान्यता थी क्योंकि सोना मात्र एक सौ पचपन साठ रुपये तोला था। बाबू सत्य नारायण जी श्री गुरुदेव भगवान के पार्षद गणों

में थे एवं उनकी कई अलौकिक कृपाओं के चश्मदीद गवाह थे, अतः यदा-कदा अपने श्री गुरुदेव की कृपाओं का वर्णन वकील साहब से किया करते थे। श्री वकील साहब, श्री सत्यनारायण जी की बातों को अनमनस्क मन से सुनते एवं उनसे कहते कि तुम किस गुरु के चक्कर में पड़ गये हो। आजकल के गुरु, शिष्यों को सम्मोहन द्वारा मन अपने वश में कर लेते हैं। और जैसा गुरु चाहते हैं वैसा ही उनका शिष्य करता रहता है। इन गुरुओं के अन्दर कोई आध्यात्मिक शक्ति नहीं होती बल्कि ये शिष्य को मूर्ख बनाने की कला जानते हैं। वकील साहब के ऐसा कहे जाने पर भी श्री सत्यनारायण सिंह अपनी आदत से बाज नहीं आते एवं जब भी मौका लगता या कचहरी के काम से उनके पास पहुंचते, श्री आराध्यदेव जी की कोई न कोई विलक्षण कृपा चरित्र सुना ही देते थे।

संयोग कुछ ऐसा बना कि सन् चौहत्तर की नौमी पर जिसे आराध्यदेव जी "योग महामेला" या श्री प्रभुजी का "अवतारोत्सव" के नाम से सम्बोधित करते हैं, पर आने का निमंत्रण श्री सत्यनारायण जी को मिला। साथ-साथ बाबू आत्मा प्रसाद जी वकील को भी मिला। बाबू सत्यनारायण सिंह जिद कर लिए कि वकील साहब, इस बार तो आपको श्री प्रभु जी के जन्मोत्सव पर चलना ही पड़ेगा। इस बात श्री सत्यनारायण सिंह ये भी कह दिये कि अगर आपका पैसा व्यर्थ जायेगा तो पैसा मैं ही लगा दूँगा। परन्तु आप श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम पर चलने का कष्ट करें। उनकी बातों को सुनकर बाबू आत्मा प्रसाद जी हंसने लगे और बोले कि चलो, इस बार चलकर तुम्हारे गुरुदेव को देखते हैं कि असली है या नकली।

प्रसंग करीब तीस साल पुराना है। एक जिज्ञासु साधक श्री गुरुदेव जी के चरण कमलों में प्रणाम किया एवं हाथ जोड़कर विनीत शब्दों में प्रश्न किया कि सच्चे गुरुदेव की पहचान क्या है ? श्री गुरुदेव भगवान उससे कहे-"लल्ला ! कोई प्राइमरी स्कूल का बच्चा, स्नातक क्लास की पुस्तकों की गुणवत्ता जाँच सकता है क्या ? जिज्ञासु साधक ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि प्रभु जी, प्राइमरी स्कूल के बच्चे में क्या सामर्थ्य है कि स्नातक क्लास की पुस्तकों की गुणवत्ता बता सके ? श्री आराध्यदेव जी अपनी मधुर मुस्कान को बिखेरते हुए बोले, लल्ला ! जिस प्रकार प्राइमरी स्कूल का बालक स्नातक कक्षा की पुस्तकों की गुणवत्ता नहीं बता सकता; उसी प्रकार सांसारिक प्राणियों में यह शक्ति नहीं है कि वे सच्चे गुरुदेव की पहचान कर सकें। श्री सद् गुरुदेव समय आने पर जिज्ञासु की पात्रता देखकर स्वयं अपना बोध करा देते हैं। खैर अब हम मुख्य प्रसंग पर आते हैं जिसमें श्री आत्मा प्रसाद जी श्री सत्यनारायण सिंह के साथ सिद्ध सेवित योग प्रशिक्षण केन्द्र संवाई धाम, सन् चौहत्तर की चैत्र शुदी सप्तमी को प्रातःकाल पहुंच गये एवं श्री सत्यनारायण सिंह ने श्री प्रभु चरणों में साष्टांग प्रणाम निवेदित किया एवं श्री आत्मा प्रसाद जी ने अनचाहे मन से चरण स्पर्श किया। श्री सत्य नारायण सिंह ने लौकिक परिचय भी श्री गुरुदेव भगवान को अपनी समझ से दिया।

श्री आत्मा प्रसाद जी की बुद्धि बड़ी ही प्रखर, प्रतिउत्पन्न एवं सामयिक निर्णय लेने में अद्वितीय थी। मोक्ष दाता ग्रन्थों का अध्ययन एवं मनन भी उन्होंने खूब किया था। अतः श्री सवाई धाम पहुंचने के बाद श्री सत्य नारायण सिंह श्री गुरुदेव के साथ हो गये एवं श्री आत्मा प्रसाद सिंह वकील साहब ने सवाई धाम पर आये हमारे भाई बहनों से अपनी वकालत की पैनी कुशाग्र एवं तार्किक बुद्धि से श्री गुरुदेव जी के सम्बन्ध में खोज करना शुरू कर दिये। जिस किसी भी गुरुभाई या बहन से वे मिलते तो कोई राम, तो कोई कृष्ण, कोई विष्णु, तो कोई साक्षात शिव ही श्री गुरुदेव जी को बतलाता अन्त में वे हार गये एवं उनकी कुशाग्र बुद्धि कोई निर्णय नहीं ले सकी। वे श्री सवाई धाम आश्रम से बाहर निकलकर एतमादपुर जाने वाले रास्ते पर चल दिये तथा श्री गुरुदेव जी के विषय में सोचते विचारते बाजार में चले गये। एतमादपुर बाजार से जब वापस वो श्री सिद्ध धाम को लौट रहे थे तो रास्ते में पड़ने वाली पहली पुलिया पर एक दुबले-पतले परन्तु महान तेजस्वी महापुरुष के दर्शन हुए। आदरणीय भाई वकील साहब बता रहे थे कि यद्यपि मैं उन्हें प्रणाम नहीं करना चाहता था परन्तु अनायास ही हमने उस महापुरुष का चरण स्पर्श किया एवं फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि श्री सवाई धाम पर जो महात्मा हैं, उनमें कुछ आध्यात्मिक शक्ति है या नहीं ? और यदि है तो कितनी ?

आदरणीय भाई जी बता रहे थे कि ऐसी बातें सुनकर उस महापुरुष ने मेरे दोनों कन्धों पर अपना वरदहस्त रखा एवं कहा कि तुम तो काफी विद्वान एवं कुशाग्र बुद्धि वाले हो। मैं सत्य सत्य कहता हूँ कि श्री सवाई धाम वाले महात्मा योगियों के ईश्वर योगेश्वर हैं और ये भी जान जाओ कि त्रिलोकी में इनसे बढ़कर आध्यात्मिक शक्ति का मालिक और कोई नहीं है। उन्होंने फिर कहा कि अभी तुमने उनसे दीक्षा नहीं ली है, उनसे प्रार्थना करके कल ही योग दीक्षा ग्रहण कर लो। यह परम शुभ एवं परम पुण्य कार्य कल प्रातःकाल ही कर लो। आदरणीय भाई जी उस परम तेजस्वी महात्मा का आशीर्वाद प्राप्त कर आये और श्री गुरुदेव महाराज के चरणों में श्रद्धा के साथ प्रणाम निवेदित करके कहे कि प्रभु जी मुझे गुरुदीक्षा देने की कृपा करें। परम कृपालु श्री गुरुदेव भगवान ने उन्हें मधुर मुस्कान के साथ स्वीकृति प्रदान कर दी एवं देव वन्दित इस चरित्र धाम में चैत्र शुक्ल अष्टमी के दिन अनाथ-नाथ ने उन्हें अपनी चरण-शरण में लेकर विधिवत योग दीक्षा प्रदान की।

आराध्यदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने इन्हें आरती पूजन एवं दो घण्टे मंत्र जाप का आदेश दिया, एवं जीवन के अन्तिम समय तक उस आदेश को आदरणीय वकील साहब ने अक्षरशः पालन किया। लगभग एक दशक से कुछ ज्यादा ही समय तक वकील साहब के मकान को केन्द्र बनाकर श्री गुरुदेव भगवान ने निवास कर वाराणसी मण्डल का योग प्रचार कार्यक्रम किया है। इस प्रकार वकील साहब हजारों भाई-बहनों को श्री प्रभु दरबार से जुड़ने के निमित्त बने रहे। अपनी वकालत की व्यस्त व्यवसाय में भी ऐसा

लगता था कि श्री गुरुदेव भगवान की कृपाओं, योग के रहस्यों एवं श्री भगवद्गीता के श्लोकों का सरल एवं सुबोध भाषा में प्रबोधन इनके जीवन का मुख्य व्यवसाय है और वकालत गौड़। वाराणसी मण्डल के साधकों द्वारा मनाये जाने वाले मासिक सत्संग में वकील साहब शायद ही कभी गैरहाजिर हुए हो।

सन् अस्सी के दशक में आदरणीय वकील साहब ने योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का जन्मोत्सव अतीव आनंद उत्साह एवं उल्लासपूर्वक भगवान त्रिलोचन के त्रिशूल पर स्थित काशी नगरी में मनाया था, ऐसा लगता था कि भगवान शंकर स्वयं प्रकट होकर अपना जन्मोत्सव मनवा रहे हों। श्री सिद्धयोग आश्रम धाम से सम्बन्धित सभी गुरु भाई–बहन से वे अत्यधिक प्रेम व प्यार करते थे। आराध्यदेव योगेश्वर श्री गुरुदेव जी महाराज भी, जब उनके किसी शिष्य को काशी दर्शन या भ्रमण की इच्छा होती थी तो वकील साहब के पास ही भेजते थे। आदरणीय भाई जी श्री गुरु आज्ञा से अपने पास पहुचने वाले भाई बहनों का क्या आतिथ्य एवं प्रेम करते थे, यह लेखनी से परे है, केवल अनुभव किया जा सकता है।

वाराणसी जनपद में निवास करने वाले हमारे एक गुरुभाई दम्पत्ति जो आराध्यदेव के अत्यन्त ही कृपा पात्र शिष्य है, एक बार संयाई धाम पहुचे। उनके द्वारा प्रणाम निवेदित करने के बाद श्री प्रभुजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया और अपने मुखारविन्दु से प्रश्न किया, लल्ला ! आत्माप्रसाद का क्या समाचार है ? हमारे गुरुभाई दम्पत्ति ने जब श्री गुरुदेव भगवान से कहा कि महाराज जी हम तो आदरणीय भाई साहब से मिलकर नहीं आये तो श्री मुख ने कहा कि वाराणसी से आये हो एवं आत्मा प्रसाद से मिलकर नहीं आये; यह तो उचित नही है। जब भी आया करो आत्मा प्रसाद से मिलकर आया करो। आराध्यदेव जी की यह वाणी भाई आत्मा प्रसाद जी के ऊपर श्री गुरुदेव भगवान् की अहैतुकी कृपा का स्वयं बोध करा रही है।

एक समय आदरणीय भाई जी ने प्रश्न किया था कि श्री गुरुदेव अपने किस शिष्य से सबसे अधिक प्रसन्न होते हैं ? श्री मुख ने उत्तर दिया, जो उनकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करता है। आदरणीय भाई जी बोले कि गुरुदेव जी यह तो बड़ा ही कठिन एवं असम्भव सा कार्य है। श्री मुख ने मुस्कराते हुए कहा लल्ला ! चिन्ता मत करो, यह कार्य श्री प्रभुजी तुमसे करायेंगे और इसी जन्म में करायेंगे।

आदरणीय भाई जी के यहां आराध्यदेव जी अपना योग प्रचार कार्यक्रम दिसम्बर के मध्य से जनवरी के प्रथम सप्ताह तक किया करते थे। इन दिनों कड़ाके की सर्दी रहती है और यदि पानी पड़ गया तो मौसम बड़ा ही खराब हो जाता है। संयोग से पहले साल ही जब आदरणीय भाई वकील साहब के यहां जगत–नियंता मेरे आराध्यदेव का कार्यक्रम निर्धारित हुआ तो मौसम कुछ इस प्रकार का बना कि वर्षा रिमझिम–रिमझिम होती रही। आदरणीय भाई जी ने आराध्यदेव जी को प्रार्थना पत्र भेज दिया कि प्रभो ! कार्यक्रम में पानी

न पड़े ऐसी कृपा की जाए। वापसी डाक से श्री गुरुदेव भगवान का आशीर्वादात्मक पत्र मिला, जिसमें लिखा था "लल्ला ! श्री प्रभुजी के कार्यक्रम में प्रकृति बाधक नहीं बनती। खूब उत्साह एवं आनन्द के साथ योग प्रचार कार्यक्रम की तैयारी करो। आश्चर्य की बात तो यह रही कि कार्यक्रम स्थल से दस-बारह किलोमीटर की परिधि से बाहर खूब पानी पड़ा। उन्हीं दिनों में जब श्री गुरुदेव भगवान का कार्यक्रम वाराणसी में चल रहा था परन्तु परिधि के अन्दर एक बूंद भी पानी नहीं पड़ा। श्री गुरुदेव भगवान् अपना वाराणसी का कार्यक्रम सम्पन्न किये एवं उसी दिन भाई जी के गले में अपना हाथ डालकर कान में बोले, लल्ला ! इस प्रकार की प्रार्थना हमसे मत किया करो। देवगण ऐसे साधक को कष्ट देने की बात सोचने लगते हैं। परन्तु हमारी इस बात का यह तात्पर्य नहीं कि तुम भयभीत रहो, निडर होकर अपनी साधना किया करो, श्री प्रभुजी, हमारे तुम्हारे साथ हैं। यह वरदान उन्हें सहज ही कृपा निधान ने दिया था।

आदरणीय भाई जी के यहां जो भी जिज्ञासु पवित्र योग की जानकारी करने अपने साधना के अन्तराओं के निवारणार्थ या कुछ शंका समाधान हेतु जाते या उनके कहते हैं; तो वे आराध्यदेव को पत्र लिखकर जब उसका उपाय जानने की प्रार्थना करते थे, तो श्री गुरुदेव भगवान उन्हे कृपामात्र यह लिखकर भेजते कि लल्ला ! तुम जो या जैसा चाहो बतला दो श्री प्रभुजी वैसा ही कर देंगे। यह आदरणीय गुरुभाई जी के अनन्य भक्ति एवं उनके गुरु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण का ही प्रतिफल था। ऐसा आभास होता है। आदरणीय भाई जी ने श्री गुरुदेव भगवान् के चरण मिलने से लेकर जीवन पर्यन्त आश्रम की निःस्वार्थ भाव से सेवा की है। उनके अन्दर एक खास बात यह रही कि बड़ी सी बड़ी सेवा करने के पश्चात् भी उनको रंच मात्र भी अहं नहीं था, जो कम ही साधकों में होता है। वे श्री गुरुदेव भगवान् के इस आज्ञा के पक्के अनुयायी थे कि निःस्वार्थ भाव से किया गया धार्मिक कर्म मोक्ष पथ पर बढ़ाता है जबकि लिप्सा से किया गया धार्मिक कर्म सुख एवं उच्च लोकों का दाता बनता है।

आदरणीय भाई जी के प्रति हमारे वाराणसी मण्डल के गुरुभाई बहनों में कितनी श्रद्धा एवं प्रेम था; यह एक प्रसंग से स्पष्ट हो जायेगा। श्री सिद्धगुफा संवाई धाम की शाखाओं में से एक मण्डल की शाखा के हमारे गुरुभाई-बहन माघ मेले से उनके निवास स्थान वाराणसी, उनके साथ आये उन भाई बहनों में काशी दर्शन और वहां के प्रमुख धार्मिक स्थलों का दर्शन करने की इच्छा एवं लालसा थी। इसी मनोकामना की पूर्ति के लिए भाई साहब उन गुरुभाई बहनों को अपने निवास स्थान पर लाये थे। दूसरे दिन प्रातःकाल लगभग साढ़े पांच बजे आदरणीय भाई जी ने वाराणसी मण्डल के एक भाई को फोन किया। फोन गुरुभाई की बच्ची ने उठाया और निवेदन किया कि पापा जी आरती आसन करके अभी-अभी ध्यान में बैठे हैं। भाई जी ने उस बच्ची से कहा कि अपने पापा से बता दो कि अभी तुरन्त अपने घर बुला रहे हैं एवं उनका आज का ध्यान यही है कि वह तुरन्त

आकर हमसे मिले। जब बच्ची ने आदरणीय भाई जी की बात आपने पापा को बतलाई तो वे दस मिनट के अंदर उनके पास चले गये। आदरणीय भाई जी ने प्रचुर मात्रा में रुपये दिये और कहा कि इन लोगों के गुरुभाई बहन दूसरे मण्डल से आये हैं; आप इन्हें ले जाकर दशाश्वमेध घाट पर माँ जी में स्नान करायें, बाबा विश्वनाथ (पुराना), काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में स्थित विश्वनाथ जी का मन्दिर एवं सभी तीर्थ स्थल जो मुख्य है का दर्शन कराकर पुनः हमारे मकान पर सभी गुरुभाई बहनों के साथ आइये। साथ ही संकटमोचन मंदिर, श्री तुलसी मानस मंदिर एवं श्री दुर्गा मंदिर का दर्शन अवश्य ही कराइयेगा। उनके आज्ञानुसार हमारे भाई प्रातःकाल से अपराह्न करीब दो बजे तक लगभग सभी तीर्थ स्थलों का दर्शन कर उनके घर सबके साथ पहुँचे, पुनः एक साथ बैठकर सभी गुरुभाई बहनों ने श्री प्रभुजी का प्रसाद ग्रहण किया। इस बीच भाई जी ने कई गुरुभाइयों को दूसरे मण्डल के गुरुभाई बहनों के आने की सूचना दे दी। साथ-साथ ये भी बता दिये कि उनका भाई बहन शीघ्र गंगा ट्रेन से दिल्ली को प्रस्थान करेंगे। आदरणीय भाई जी अपने सहायकों के साथ तथा कई गुरु भाई बहन ने रेलवे स्टेशन पहुँचकर जाने वाले भाइयों की विदाई श्री प्रभुजी के जयकारे के साथ दी।

अब आदरणीय भाई आलोकप्रसाद जी के जीवन के एक मुख्य घटना का वर्णन जिसकी प्रत्यक्ष गवाह हमारी आदरणीया एवं परम योग साधिका गुरु बहन डा० सुश्री उमा बहन जी हैं, संक्षिप्त होगा। आदरणीय भाई बहनों को यह जानकारी होनी चाहिये कि भाई जी को कोई संतान नहीं थी। परम पवित्र श्री योग साधन आश्रम के श्री गुरु भवन में परम आदरणीया बहन जी ने श्री गुरुचरणों में इस हेतु निवेदन किया। आदरणीय भाई जी श्री गुरुभवन में बुलाये गये श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्दु से कहा कि लल्ला ! तुम्हारे मन में पुत्र प्राप्ति की इच्छा है, यदि है तो संकोच रहित होकर बतलाओ। आदरणीय भाई जी कुछ नहीं बोल सके, आदरणीया बहन जी ने अवश्य ही दूसरी सिफारिश किया। आदरणीय भाई जी ने प्रार्थना किया कि प्रभुजी मुझे संतान क्यों नहीं है, इसका रहस्य बतलाने की कृपा की जाए। श्री मुख ने समझाया, "लल्ला ! पिछले एक जन्म में तुम चक्रवर्ती सम्राट थे एवं अपनी भरी राजसभा में तुमने अपने श्री गुरुदेव का अपमान किया था, उन्हीं के श्राप से तुम निःसन्तान हो।" आदरणीय भाई जी ने पुनः श्री चरणों में प्रार्थना किया, "उस जन्म में हमारे श्री गुरुदेव कौन थे ?" श्री मुख ने कहा, "लल्ला ! यह जानकर तुम क्या करोगे ?" आदरणीय भाई जी ने बड़े ही विनीत शब्दों में प्रार्थना किया, "प्रभुजी यह जानने की मेरी उत्कृष्ट इच्छा है और फिर आप नहीं बतलायेंगे, तो यह इच्छा मेरी बनी ही रहेगी, अतः कृपा करके उस जन्म के श्री गुरुदेव भगवान का नाम बतलाने की कृपा की जाए।" श्रद्धाभाव से ओत-प्रोत उनकी इस प्रार्थना को सुनकर श्री गुरुदेव भगवान मुस्करा दिये एवं हकीकत छिपा नहीं पाये।

उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी में कहा—"लल्ला ! समझ लो कि उस जन्म में भी मैं ही

तुम्हारा गुरु था।" अनाथनाथ के मुखारविन्दु से ये प्रेरणादायक रहस्य सुनकर श्री गुरु भवन में उपस्थित सभी भाई–बहनों की आखें खुली की खुली रह गई। श्री गुरुदेव भगवान ने आत्मा बाबू को निमित्त करके कहा, लल्ला ! अब ऐसी कोई बात नहीं है और मैं तुमसे बेहद प्रसन्न हूँ। श्री प्रभु जी की कृपा से लौकिक एवं परलोक का कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। तुम्हें पुत्र की प्राप्ति तो हो जायेगी परन्तु तुम्हारे आध्यात्मिक परमोत्कर्ष में बाधा आ जायेगी। अब तुम सोच विचार कर, कल तक हमें बतला देना। राजी है हम उसी में जिसमें तेरी राजी है, के सिद्धान्त के अनुयायी श्री माई जी ने प्रार्थना किया कि प्रभुजी आप ही जैसा उचित समझें करने की कृपा करें। "ठीक है लल्ला !" यह कहकर गुरुदेव भगवान ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

जीवन के अन्तिम क्षणों में भी वे यही कहते रहे, "प्रभुजी अपनी शरण में ले लो, प्रभु जी अपनी शरण में ले लो।" यह आदरणीय भाई जी के अन्तिम शब्द थे अन्तिम श्वांस के। उनके शरीर त्यागने की बात वाराणसी शहर के सभी गुरु भाई बहनों को मात्र तीस मिनट के अन्दर ज्ञात हो गई एवं सैकड़ों की संख्या में उनके निवास स्थान पर गुरु भाई बहन पहुंच गये। मरणोपरान्त उनका स्थूल शरीर और अधिक देदीप्यमान हो गया था एवं लगता था कि अब कुछ बोलने वाले हैं। पवित्र काशी नगरी के मणिकर्णिका घाट पर गंगा के किनारे उनके पार्थिव शरीर का शास्त्रोक्त विधि से, सैकड़ों की संख्या में गुरुभाइयों की उपस्थिति एवं "श्री गुरुदेव भगवान की जय, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जय, हर–हर महादेव की मगन भेदी जयकारों" के साथ उनका दाहसंस्कार किया गया। आदरणीय भाई जी की शवयात्रा अन्य शवयात्राओं से बिल्कुल अलहदा थी। सभी शवयात्रा के यात्री बोलते हैं कि "राम नाम सत्य है, सबकी यही गति है" परन्तु भाई जी की शवयात्रा के साथ जाने वाले बोलते रहे"–

"श्री गुरुदेव जय जय, सद्गुरु जय-जय
अखण्ड ज्योति प्रभु राम लाल जय-जय।"

अन्त में अगाध करुणा सागर श्री गुरुदेव भगवान के कमलवत युगलचरणों में साष्टांग प्रणाम के साथ यह प्रार्थना है कि लगभग तीन दशक तक आश्रम की अनवरत सेवा करने वाले हमारे आदरणीय भाई जी की धर्म परायण अर्धांगिनी एवं हमारी आदरणीया गुरु बहन को यह वियोग सहन करने की कृपा की जाए तथा साथ ही उनको यह शक्ति प्रदान करें कि वे उनके (अपने पतिदेव) द्वारा संचालित कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए जीवन पर्यन्त प्रयत्नशील रहें। हमारे वाराणसी मण्डल के गुरुभाई बहनों के मन में उनके लिए अपार आदर का स्थान है एवं श्री प्रभुजी की कृपा से आगे भी ऐसा ही बना रहेगा ऐसी आशा है।

"सद्शिष्य का श्री गुरुदेव के यहां गमन हो गया,
श्री आत्मा का श्री परमात्मा से मिलन हो गया।"

आश्रम की छवि बिसरत नाहीं !

दिनेश शर्मा, जरैरा (दिल्ली)

द्वार विशाल बड़ा अति सुन्दर, शोभन की कोई सीमा नाहीं।
विटप खड़े चहुंदिश अति सुंदर, पुष्पन पर भंवरा मड़राहीं।।

हरे-हरे वाम मोर अति कूंजत, कपि करतब नटखट झगराहीं।
कोयल फूँक कबूतर गुट गुट, बछड़े के संग गऊमाता रंभाहीं।।

पवन बहे मंदी मंदी गति, कदम्बन के विटपन की छांह मिटलाहीं।
मृदुभाषी प्यारे ब्रह्मचारी कर्तव्यनिष्ठ, गुरुदेव के आदेश को पूरा निभाहीं।।

प्रभुजी का वरदान श्री सिद्धगुफा को तेज, चहुंदिश आश्रम में दिखलाहीं।
श्री सिद्धगुफा की रज पतित पावनी, रोगियों के रोग को पल में भगाहीं।।

योगियों का योग यहां दिन रात फूलो फलै, प्रभु दर्शन लालसा बढ़ाहीं।
गुरुजी का वरदान ध्यान लगे जल्दी यहां, नहीं तो एक बार आप आजमाहीं।।

भवन बड़े भव्य बने कमरन की कतार, यहां से यहां तक कोई कमी नाहीं।
कण-कण से तेज फूटे गुरु का तलाब माहीं, सूखारोग बालकन को पल भगाहीं।।

पपिये की पीऊ-पीऊ हृदय को अकुलात, गुरुदेव की याद में आंखें भीग जाहीं।
हम सबको छोड़ दिया बड़े निरमोही बने, मेरे दीऊ प्रभु तुमरी बातें रहे न भाहीं।।

आश्रम पुकारे प्रभु लौटि आओ एक बार, हम सबकी आंखिन की प्यास बुझि जाहीं।
योगावतार योगीराज मेरीऊ टेर सुनो जगत में ऊबन लगो अपनी ही ज्योति में मुझ को मिलाहीं।।

सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहनजी महाराज,
योगिराज-सान्निध्य-सौभाग्य तथा उनसे जुड़े

संस्मरणात्मक कतिपय अंशों का निरूपण

लेखक—द्वारिका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

श्री सद्गुरुदेव का सान्निध्य कब प्राप्त हुआ यह बता पाना इसलिये कठिन है मेरे लिए, क्योंकि न जाने उन कृपानिधान की इस अकिञ्चन पर किन-किन जन्मों से कृपा होती आ रही है। अल्पज्ञ यह जीव कर्म-वासनाओं के पाश में आबद्ध होकर जानते हुए भी स्वयं को कर्म-बन्धनों से मुक्त करने में सर्वथा असमर्थ ही रहता है। जब कभी, भगवत्कृपा कह लीजिये, अथवा इसे अपने ही प्राक्तन कर्मों के संचित संस्कारों के पापमय अथवा पुण्यमय कृत्यों का प्रादुर्भाव हुआ करता है, तब-तब महापुरुषों, सिद्धों तथा सद्गुरुदेव के सान्निध्य का सुखद संयोग सम्भव होता है।

संस्कारों के इसी क्रम में मुझे एक घटना का स्मरण प्रायः आता है। जब संस्कार प्रबल होते हैं तभी पुण्य संयोग हुआ करते हैं जो समय या संस्कारों के पुनः उदय होने पर सान्निध्य का कारण हो जाया करते हैं। इसी प्रसंग में, मैं एक सत्य घटना के द्वारा इसे स्पष्ट करूंगा।

मैं सन् १९५० और ५५ के मध्य सहारनपुर जनपद में अपने बड़े दिवंगत गुरुभाई श्री जुगमन्दर दास जी के सम्पर्क में इस प्रकार आया कि मैं भी सहारनपुर में, जिस विभाग में (कोआपरेटिव डिपार्टमैन्ट) कार्यरत थे, संयोग से मेरी प्रथम नियुक्ति भी ७ नवम्बर, १९५१ में हुई थी। मैं सहारनपुर में उसी विभाग में सरकारी सेवा में सन् १९६० तक वहाँ रहा था। तत्पश्चात् मैं एक परीक्षा में सफल होकर उ० प्र० सचिवालय की सेवा में लखनऊ आ गया था। मेरे कहने का अभिप्राय मात्र इतना ही है कि उक्त दस वर्षों के दीर्घ समयान्तराल में स्व० जुगमन्दर दास जी द्वारा श्री सद्गुरुदेव के प्रति कभी भी चर्चा का प्रसंग नहीं आया, यद्यपि बाद में मेरे आश्रम में यदा कदा उपस्थित होने पर हम दोनों को सुखद आश्चर्य रहा कि सेवाकाल में साथ-साथ कार्य करते भी कभी ऐसा न उनके मन में भाव उत्पन्न हुआ और न ही मेरे संस्कारों के तब फलित न होने की दशा में कैसे सम्भव था कि मैं श्री सद्गुरुदेव के चरणों में शरण ग्रहण करता। इसका सीधा-सीधा अर्थ यह हुआ कि जब पुण्य प्रभाव के कारण संस्कारों का उदय हुआ करता है तभी सद्गुरुदेव के सान्निध्य की सन्निधि प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं हो सकती।

अब देखिये, सन् १९८० जब आया, मैं सचिवालय में सेवारत था ही। मेरे एक अन्य बड़े गुरुभाई श्री केदारनाथ पांडे जी भी यदा कदा सचिवालय आया करते थे। एक दिन वे स्वयं सचिवालय में मेरे कक्ष में आ गये और मुझसे कुछ अध्यात्मक विषय पर चर्चा में

प्रवृत्त हो गये। मेरी चूँकि अध्यात्म विषय में आरम्भ से ही प्रवृत्ति थी, अतएव बात बात में उन्होंने मुझे श्री गुरुदेव द्वारा पातञ्जल योगदर्शन शास्त्र पर आधारित दो खण्डों में प्रकाशित व लिखित योग-सिद्धान्त को पढ़ने के लिये प्रेरित किया था तथा एक बार मुझे उनके साथ संवाई सिद्धगुफा धाम में भी श्री सद्गुरुदेव के दर्शनों का लाभ दीक्षाग्रहण से पूर्व प्राप्त हो चुका था। सिद्धयोग की कदाचित् १९८० या १९८१ की पत्रिकाओं को भी उन्होंने मुझे पढ़ने को दिया था और श्री गुरुदेव के विषय में भी उनकी अतिशायिनी तेजस्विता के विषय में भी बताते रहा करते थे। उन्होंने तब मुझे यह भी बताया था कि गुरुदेव लखनऊ भी पधारा करते हैं। माघ मेले की समाप्ति के पश्चात् इत्यादि।

उन्होंने ही मुझे एक बार श्री गुरुदेव के सचिवालय में योग परक एक व्याख्यान के आयोजन के कार्यक्रम के लिए प्रेरित किया था जो मैंने स्वयं अपने सहयोगी मित्रों के माध्यम से सम्भवतः सन् १९८० में ही सचिवालय स्थित कक्ष सं ८४ (रामागार) में करवाया भी था। उस समय उनके साथ, मुझे याद है, सुश्री उमा जी, ब्रह्मचारी श्री ओम् प्रकाश पालीवाल, मा० श्री मोहनलाल जी अग्रवाल आदि भी आये थे और उनके योगपरक व्याख्यान के श्रवणार्थ समागार में इतनी भीड़ एकत्र थी कि श्रोतागण खड़े-खड़े बड़े मनोयोग से उनके सुमधुर व सहज सरल भाषा में प्रबल भाषण को अनन्तरत एक डेढ़ घण्टे सुनते रहे थे और कदाचित् सचिवालय के इतिहास में यह एक अनूप दृष्टान्त सिद्ध हुआ जब एक सिद्ध महायोगी हमारे आराध्य श्री गुरुदेव का योग परक व्याख्यान सचिवालय परिसर में आयोजित हुआ था। इसके अतिरिक्त, श्री गुरुदेव के तथोक्त व्याख्यान के पूर्व मेरे अन्तर्मन में भी यह स्फुरणा हुई कि उनकी प्रशस्ति में एक गीतिका (स्वागताष्टपदी) देववाणी संस्कृत में रचित स्वस्त्ययनात्मिका बनाऊँ और उनकी कृपावशात् वह भी तत्काल प्रणीत हुई और मैंने उस ललिताक्षरी स्वागतगीतिका को उनके समक्ष गद्गद कण्ठ से उच्चारा तो उनके उस गीतिका के पश्चात् निम्नांकित आशीर्वचन थे–

"लला, उत्कृष्ट विद्वान हो।" इस प्रकार उन स्वनामधन्य गुरुदेव की कृपा प्रसाद पा मैं कृतकृत्य तथा जीवन भी धन्य ही हो गया। उनके वचन वास्तव में अमोघ थे। वे वास्तव में सिद्धयोगी के रूप में इस धराधाम पर अवतरित हुए और उन्होंने सर्वसमर्थ होते हुए भी अपने अस्तित्व को सर्वदा नकारा और उनके श्री मुख से यही उच्चरित होते सुना कि लला, कर्ता और करनहार तो वही प्रभु जी हैं, मैं तो मात्र एक चम्मच और कड़छी हूँ जो उनके दिये हलवे को बाँटता रहता हूँ। हमेशा उन्होंने अपने गुरुदेव (परमप्रभु श्री रामलाल जी महाराज) की ही महिमा-मण्डित किया और स्वयं को सब कुछ करते-कराते भी मात्र अकिञ्चन की कोटि में रखा। यह कितनी महान गरिमा थी हमारे गुरुदेव की। स्वयं अनेक अवसरों पर यही अपने उपदेशामृत प्रवचनों में समझाया भी करते थे कि समुद्र पान के पश्चात् भी होंठ सूखे हों, ऐसा बनो। उनका तात्पर्य व अभिप्राय मात्र यही था कि सब कुछ हासिल हो भी जाय तब भी रहो निरअहंकार और अकर्त्तयित्। इसीलिए तो प्रमाण रूप में हमारे शास्त्रों का भी यही उद्घोष है कि–

यस्य देवे परा भक्तिः, यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः, प्रकाशन्ते महात्मनः।।

विस्तार भय से, मैं इतना और उल्लेख करना चाहूँगा कि उनके सान्निध्य में कोई भी आया, उनका कल्याण निश्चित रूप से उनके दृष्टिपात मात्र से हुआ और होता रहेगा, यह मेरा अटल विश्वास तथा अनुभूत सत्य है। इस प्रसंगवश मैं अपने पारिवारिक सदस्यों के विषय में निश्चित जानकारी के आधार पर उल्लेख कर देना समीचीन समझता हूँ।

मेरी धर्मपत्नी श्रीमती प्रियतमा शर्मा व मैं स्वयं सम्भवतः सन् १९८६ में उनसे दीक्षायान हुए थे उनके लखनऊ प्रवास की अवधि में श्री मोहनलाल जी अग्रवाल के आवास–स्थान ए५० २४००, राजाजी पुरम लखनऊ में। तब से अब तक उनकी कृपा प्रसाद से हम दोनों धन्य व कृतार्थ हैं।

मैंने तीन विवाह–प्रथम पुत्री का १९८९ में, दूसरा पुत्र का सन् १९९२ में तथा तीसरा पुनः पुत्री का सन् १९९८ में उनका स्मरण ध्यान करते किए, उस अवधि में सभी मंगल विधान सहित निर्विघ्न रूप में सम्पन्न हुए।

मेरी प्रथम पुत्री के विवाह के सात वर्ष तक सन्तति का योग नहीं बना। परम कृपालु श्री गुरुदेव के आश्रम में तब श्रद्धावनत मेरे दामाद व पुत्री आशीर्वचन पाये तब एक पुत्र तथा एक पुत्री उन्हें वहीं से वरदान रूप उपलब्ध हुई।

मेरा पुत्र सन् १९८० में हाईस्कूल की परीक्षा समुत्तीर्ण करने के पश्चात् उन श्री गुरुदेव के सान्निध्य में एक मास तक आश्रम में रहा और मैं तो उन श्री गुरुदेव के सान्निध्य का सुप्रभाव ही प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ कि वह अतीव उज्जवल संस्कारवान बना और अध्यात्म पथ का पिपासु व जिज्ञासु दोनों ही बना है। यह श्री गुरुदेव की प्रत्यक्ष व परोक्ष महिमा नहीं तो क्या है ?

श्री गुरुदेव से मेरा पत्राचार भी होता रहता था। एक बार मैंने देववाणी में उन्हें पत्र लिख दिया तो उन्होंने स्वयमेव अपने कर कमलों से देवभाषा संस्कृत में ही उत्तरित कर मुझे गौरवान्वित किया। उनके और मेरे मध्य हुए एक–एक पत्र को मैंने सुरक्षित रूप में एक सन्निधि के रूप में रखा हुआ है।

उनकी कृपावशात् ही मुझमें काव्य–कौशल (चाहे देववाणी हो, आंग्लभाषा हो अथवा राष्ट्रभाषा हिन्दी हो) लेखनी से अजस्र धारा प्रवाहवत् प्रवहमान होता रहता है।

उनके गुण गान में अपनी अल्पबुद्धि से उन सर्वज्ञ का क्या कर सकता हूँ तथापित जैसा कि महिम्नस्तोत्र के प्रथम श्लोक में–"स्वमति परिमाणावधि गुणन" के अनुसार जो कुछ भी लिख बैठा हूँ यह भी उनकी ही अन्तःप्रेरणा का परिणाम मानते हुए तथा श्री गुरुचरणों में कोटि–कोटि नमन कर लेखनी को यहीं विराम देता हूँ।

जय–जय गुरुदेव !

❊❊❊

हिमालय के अमर महायोगी

पूर्णचन्द्र पन्त

निर्माण काय को लेकर आकाश मार्ग से हिमालय को प्रस्थान

सन् १९३८ की घटना है। उन दिनों प्रभुजी अपने भक्तजनों के साथ अमृतसर नगर में दुलीचन्द नागपाल की कोठी पर रह रहे थे। उस वर्ष गुरुपूर्णिमा का पर्व भी बड़े उत्साह के साथ वहीं मनाया गया। वहीं कई दिनों तक दर्शनार्थी भक्तजनों की भीड़ लगी रही। गुरुपूर्णिमा के ठीक बीसवें दिन प्रभु जी ने एक आश्चर्यजनक लीला की जिसे कोई नहीं जान सका। उन्होंने कायनिर्माण सिद्धि के द्वारा अपने शरीर से उसी प्रकार का एक और शरीर प्रकट कर दिया। पहले वाले शरीर को लेकर वे हिमालय को प्रस्थान कर गये और दूसरा शरीर वहाँ उनके स्थान पर काम करता रहा और कुछ घंटे बाद एकाएक वह शरीर शान्त हो गया। जिसे देखकर वहाँ उपस्थित सभी भक्तजन शोक सागर में डूब गये। बाद में आश्वस्त होकर उन्होंने भाव विभोर होकर उच्च स्वर मे संकीर्त्तन करना आरम्भ कर दिया। प्रभुजी का वह शरीर दूर से आने वाले भक्त जनों के दर्शनार्थ छत्तीस घंटे तक वहीं सुरक्षित रखा गया। तब तक वहाँ अनवरत संकीर्तन चलता रहा और अगले दिन पूरे समारोह के साथ विधि पूर्वक उसका दाह संस्कार कर दिया गया। अन्त्येष्टि क्रिया पूरी हो जाने के बाद सभी भक्त लोग टूटे हृदय लेकर अपने अपने घरों को लौट गये। सभी को कई दिनों तक यही अनुभव होता रहा कि हम लोगों का सब कुछ लुट गया है।

शरीर शान्त हो जाने के बाद की अद्‌भुत लीलायें

शरीर शान्त हो जाने से लेकर उसे अग्नि में समर्पण करने की अवधि में प्रभु जी ने संस्कारी आत्माओं का कल्याण करने के उद्‌देश्य से कई अद्‌भुत लीलायें की, जिनमें से निम्नलिखित घटनायें प्रमुख हैं :–

१. गुरु का बटाला में अपने एक कौटुम्बिक भाई से मिलना एवं उसके साथ भोजन करना

अमृतसर से लगभग १२ किलोमीटर की दूरी पर गुरु का बटाला नामक एक ग्राम है। वहाँ गाँव से बाहर एक बाग में प्रभु जी का एक पड़ौसी पंडित बैठा हुआ था, जो कि उन्हीं के कुटुम्ब का था और कौटुम्बिक रिश्ते में उनका भाई लगता था। वह पंडित प्रभु जी के योग–ऐश्वर्या और मान प्रतिष्ठा को देखकर उनसे बहुत ईर्ष्या करता था। अमृतसर में

शरीर छोड़ देने के बाद प्रभु जी अचानक वहां प्रकट हो गये। प्रभुजी को असमय, एकाएक और अकेले वहाँ आते देखकर वह पंडित आश्चर्यचकित होकर कुछ क्षण उन्हें देखता रहा और फिर व्यंगपूर्वक बोला—कहो योगिराज जी ! आज आप पैदल और अकेले इतनी दूर कैसे चले आये ? आप तो हमेशा चेले—चेलियों से घिरे रहते थे, आज उन सबको कहाँ छोड़ आये हैं ?

प्रभु जी बोले—भाई ! मैं सारा प्रपंच छोड़ आया हूँ और अब हिमालय जा रहा हूँ।" यह सुनकर वह पंडित बड़ा प्रसन्न हुआ। प्रभु जी लगभग दो घण्टे तक वहाँ रहे। दोनों में सम्भाषण होता रहा, दोनों ने वहाँ एक साथ भोजन किया। फिर प्रभु जी उससे विदाई लेकर चलने को तैयार हो गये। वह भी उन्हें विदा करने कुछ कदम उनके साथ चला। तब प्रभु जी ने उससे कहा—अब मैं चलता हूँ, आप विश्राम करो। हाँ ! तुम मेरा एक काम अवश्य कर देना। ज्योंही तुम अमृतसर पहुँचोगे, सीधे नागपाल की कोठी पर चले जाना। वहाँ हमारे शिष्य लोग हमारे वियोग में दुःखी हो रहे होंगे, तुम उन्हें हमारा यह सन्देश देना कि—"अब हम हिमालय को जा रहे हैं, शीघ्र ही फिर मिलेंगे।" इतना कह कर वे वहीं अन्तर्ध्यान हो गये।

यह देखकर वह पंडित बेचारा ठगा सा रह गया। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। वह बार बार अपनी आँखों को मलते हुए सोचता रहा कि—कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा था। यदि यह सत्य घटना है तो रामलाल अवश्य ही सिद्ध योगिराज है। मैं मूर्ख ही अभागा रहा जो उनके सत्संग से लाभ उठाने की बजाय अकारण ही उनसे द्वेष करता रहा। अब जल्दी से उसके घर पर पहुँचकर देखता हूँ कि क्या वह सचमुच हिमालय को चला गया है या कि घर पर ही है। वह पंडित किसी वाहन में बैठकर शीघ्र ही अमृतसर पहुँच गया। वह सर्वप्रथम दुलीचन्द नागपाल की कोठी पर ही पहुँचा। वहाँ अन्दर हाल में संकीर्तन चल रहा था और बाहर बरामदे में कुछ प्रभु भक्त बैठे हुए कुछ विचार विमर्श कर रहे थे। उन सबके चेहरों पर उदासी छायी हुई थी।

उस पंडित ने वहाँ जाते ही कहा—मुझे अभी चार घंटे पूर्व तुम्हारे गुरु यहाँ से कुछ दूर गाँव में मिले थे। वे दो घंटे वहाँ मेरे साथ रहे और मेरे साथ ही उन्होंने भोजन किया। जाते समय उन्होंने तुम लोगों के लिये एक सन्देश दिया है, वही बताने मैं यहाँ आया हूँ। उन्होंने कहा है कि—मैं अब हिमालय जा रहा हूँ। तुम लोग दुःखी मत होना, हम फिर मिलेंगे।

यह सुनकर बाहर बैठे लोगों में से एक व्यक्ति उसे अपने साथ अन्दर उस हाल में ले गया जहाँ संकीर्तन चल रहा था और उसे प्रभु जी के शव के दर्शन कराते हुए बोला—हमारे गुरुदेव तो ये पड़े हैं। उन्होंने अब से आठ घंटे पूर्व शरीर छोड़ दिया था। प्रभु जी का शव देखकर वह व्यक्ति हक्का बक्का रहा गया और बोला—इनकी लीला को ये

ही जाने। मुझे तो चार घंटे पूर्व ही गुरु जी बटाला में मिले थे। वह यह कहते हुए वहाँ से चला गया—प्रभो ! आपकी लीला अनन्त है, आप धन्य हैं। यह मेरा दुर्भाग्य रहा जो कि—मैं समय रहते अहंकारवश सदा आपसे दूर रहा।

२. वैरागी महात्मा को आकाश में दर्शन देना और आकाश मार्ग में खड़े खड़े उसे योगदीक्षा देना

एक युवक महात्मा प्रभु जी के दर्शनार्थ उनके पास जाता रहता था। कई बार उसके मन में दीक्षा लेने का विचार आया। जब भी उसने दीक्षा लेने का विचार किया उसके मन में कुछ न कुछ सन्देह पैदा हो जाता था। अतः दुविधा में पड़े रहने के कारण वह चाहते हुए भी प्रभु जी से योगदीक्षा नहीं ले सका। वह महात्मा अमृतसर में चाटीविंड दरवाजे के बाहर नहर के किनारे कुटिया बनाकर रहता था। वह बड़ा स्वाध्यायशील था। प्रभु के महाप्रयाण के समय भी वह अपनी कुटिया में बैठा हुआ स्वाध्याय कर रहा था। अचानक प्रभु जी की दृष्टि उस पर पड़ गयी और वे आकाश मार्ग से उसकी कुटिया के निकट पहुँचकर आकाश में स्थित होकर बोले—अरे वैरागी ! हमारी ओर देख और हमारी बात ध्यान से सुन तू हमसे दीक्षा लेना चाहता था पर दुविधा में पड़ा रहा। अतः हम तुझे दीक्षा देने स्वयं तुम्हारे पास आये हैं। हम तुम्हें एक मन्त्र बता रहे हैं इसे ध्यानपूर्वक सुन। इस मन्त्र का निरन्तर जप करते रहना। ऐसा करने से तुम्हारे ध्यान में खूब प्रगति होगी और हर प्रकार से कल्याण होगा। यह कहते हुए उन्होंने आकाश में स्थित होकर ही उसे एक दिव्य मन्त्र का उपदेश दिया और फिर बोले—हम नागपाल की कोठी पर शरीर छोड़ आये हैं और अब हिमालय जा रहे हैं। तुम यदि हमारे स्थूल शरीर का दर्शन करना चाहो तो वहाँ चले जाओ।" यह कहकर प्रभु जी वहीं अन्तर्ध्यान हो गये।

वह महात्मा आश्चर्यचकित होकर आकाश में इधर-उधर देखने लगा और फिर शीघ्रता से नागपाल की कोठी पर पहुँचा। वहाँ यह घटना सबको बताई। वहाँ का दृश्य देखकर उसके मन को बड़ा आघात पहुँचा। अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हो जाने के बाद वह अपनी कुटिया पर लौट आया और बड़े उत्साहपूर्वक प्रभुजी द्वारा दिये गये मन्त्र को जपना आरम्भ कर दिया। जिसके फलस्वरूप अगले दिन ही उसकी प्रगाढ़ ध्यान स्थिति बन गई और उसे बड़े-बड़े दिव्य अनुभव होने आरम्भ हो गये।

३. योगी नारायणदास जी को खेचरी सिद्ध कराना

नारायण दास जी प्रभुजी के विशेष शिष्यों में से एक थे। दीक्षा से पूर्व ही प्रभु के चरणारविन्दों में उनकी अनन्यनिष्ठा बन गई थी। दीक्षाकाल में प्रभु जी उन्हें षट्चक्रों की साधना का उपदेश दिया और ऋद्धि-सिद्धि सहित गणेश जी का ध्यान करने की आज्ञा दी। प्रभु जी की आज्ञानुसार अभ्यास करते हुए थोड़े दिनों में ही उन्हें मूलाधार कमल के साक्षात् दर्शन होने आरम्भ हो गये और उनकी ध्यान स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। ध्यान में उन्हें

बड़े-बड़े दिव्य अनुभव हुआ करते थे तथा कई प्रकार की दिव्य औषधियों का ज्ञान भी उन्हें समाधि स्थिति में प्राप्त हुआ। ध्यान से उठने के बाद वे जंगल में उन जड़ी-बूटियों को उखाड़ कर लाते थे और सर्वसाधारण के हितार्थ उनका उपयोग किया करते थे। ध्यान में उन्हें प्रभु जी की अद्भुत लीलाओं के दर्शन प्रायः होते रहते थे। ध्यानाभ्यास के पश्चात् जब वे प्रभु जी को प्रणाम करके अपने घर को चलते तो पूरे मार्ग में प्रभुजी को आकाश मार्ग से अपने साथ चलते देखा करते थे और घर पहुँचने पर प्रभु जी को वहां एक दिव्य सिंहासन पर बैठा देखा करते थे।

उनके मन में खेचरी सिद्धि प्राप्त करने की प्रबल अभिलाषा थी जिसे अन्तर्यामी प्रभु जी ने बड़े अद्भुत तरीके से पूर्ण किया। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के लीलावसान के अवसर पर योगी नारायण दास जी किसी नदी के किनारे ध्यानस्थ बैठे हुये थे। अकस्मात् उन्होंने देखा कि आनन्दकन्द श्री प्रभुजी जटाधारी रूप में आकाशमार्ग से उड़ते चले जा रहे थे। उनके सामने आकर वे कुछ क्षणों के लिये आकाश में स्थित होकर कहने लगे-"बेटा नारायण दास! आँखें खोलो और हमारी बात सुनो! हम अब तक तुम्हारी खेचरी नहीं करा सके, उसे कराने के लिये ही हम तुम्हारे पास आये हैं। तुम्हें हम एक मन्त्र बता रहे हैं। तुम इसे ध्यानपूर्वक सुनो और निरन्तर इसका जाप करते रहना। इससे तुम्हें शीघ्र खेचरी सिद्ध हो जायेगी। अब तुम हमारे स्थान पर चले जाओ। वहाँ हम अपना शरीर छोड़ आये हैं और अब हिमालय को जा रहे हैं।" ऐसा कहकर प्रभु जी ने आकाश में ही स्थित रहकर नारायण दास जी को एक दिव्य मन्त्र का उपदेश दिया जिससे उन्हें अनायास ही खेचरी सिद्ध हो गई।

नारायण दास जी को मन्त्रोपदेश करके प्रभु जी देखते ही देखते वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। नारायण दास जी अत्यन्त भावुक होकर उनके स्थूल शरीर के दर्शनार्थ बड़ी शीघ्रता से नागपाल की कोठी की ओर चले गये। वहाँ उन्होंने प्रभु जी के जटाधारी वेश में दर्शन देने और आकाश मार्ग से हिमालय चले जाने की घटना का समाचार सभी सत्संगियों को सुनाया। अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हो जाने के तुरन्त बाद वे अपनी कुटिया पर लौट आये और उन्होंने प्रभु जी द्वारा दिये गये उस मन्त्र का जप आरम्भ कर दिया। उस जप के फलस्वरूप नारायण दास जी अनुभव करते थे कि उनके प्राण ब्रह्माण्ड में हैं और वे सहस्त्रदल कमल में स्थित हैं। उन्हें हर समय दिव्य नाद सुनाई देता था। मन्त्र का स्मरण करते ही वे ध्यानस्थ हो जाया करते थे। उपरोक्त घटना के कुछ समय पश्चात् नारायण दास जी ने प्रभु का स्मरण करते हुए योगरीति से अपने भौतिक देह का परित्याग कर दिया और वे उनके ही पावन धाम को चले गये।

***

दुनिया में गुरु हजारों हैं.....

प्रेषक—अवनीश भटनागर

दुनिया में गुरु हजारों हैं, प्रभु रामलाल का क्या कहना
प्रभु रामलाल का क्या कहना
प्रभु चन्द्रमोहन का क्या कहना, दुनिया में.....

दीन दुखियों ने पुकारा था जब, भारत भू पे पधारे थे तब
बाल रूप का बनाना क्या कहना
अमृतसर आना क्या कहना, दुनिया में .....

कीकर की दातुन से तुमने, आंवला वृक्ष बनाया था
गंगा को बुलाना, क्या कहना
कुंये में दिखाना, क्या कहना, दुनिया में.....

योग की शिक्षा देने को प्रभुरामलाल जी आये हैं
साधन को सिखाना क्या कहना
रोगों का भगाना क्या कहना, दुनिया में.....

रामरती सी अधमा को भी शक्तिपात का दान दिया
पापों से बचाना क्या कहना
गुण गाये जमाना क्या कहना, दुनिया में.....

तुमने रूप विराट को दर्शाकर, परमेश्वर रूप दिखाया था
निज तन में दिखाना, क्या कहना
अंग-अंग में दिखाना, क्या कहना, दुनिया में.....

योग के सूरज को तुमने इस जगत में आकै दिखाया है
अंधेरा हटाना क्या कहना
प्रकाश दिखाना क्या कहना, दुनिया में.....

महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी आप ही के पूर्णरूप हैं ये
सादगी इनकी क्या कहना
पर शक्ति अनन्त है क्या कहना, दुनिया में.....

जहाँ भी भक्त बुलाते हैं बस वहीं प्रकट हो जाते हैं
चरणों में लगाना, क्या कहना
शक्ति का जगाना, क्या कहना दुनिया.....

दास अवनीश है युगल चरण में, महाप्रभु की अभय शरण में
इनकी दया का क्या कहना
इनकी कृपा का क्या कहना, दुनिया में.....

सर्वदेवों की माता गऊ माता

डा० रेखा चतुर्वेदी (रीडर–प्राचीन इतिहास)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि गोधन पर निर्भर रही है। बैल और गाय इस कारण से पशुओं में अधिक महत्वपूर्ण समझे गये हैं। सिन्धुघाटी की सभ्यता में बैल धार्मिक महत्व का समझा गया। वहां से प्राप्त सीलों पर कूबड़धारी बैल बहुतायत से मिले हैं। बैलों की प्राप्ति गायों से होती है इसलिये गाय को सदा जननी रूप में देखा गया, जिस पर हमारी समृद्धि, सुख और शांति निर्भर रही है। तुलसीदास जी ने रामजन्म का प्रयोजन बताते हुये मानस में लिखा है–

विप्र धेनु सुरसंत हित, लीन्ह मनुज अवतार
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार

वेदव्यास जिन्हें महाभारत का रचनाकार माना गया है, उन्होंने गाय की प्रशंसा में लिखा है कि–**गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किंञ्चितदिहाचयच्युत।।**

'कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शन चापि पार्थिव।
गवां प्रशस्यते वीर सर्व पाप हरं शिवम्।।'

अर्थ है कि मैं इस संसार में गौओं के समान दूसरा कोई धन नहीं समझता। गौओं के नाम और गुणों का कीर्तन श्रवण, गौओं का दान तथा उनका दर्शन इनकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। यह समस्त कार्य सम्पूर्ण पापों को देर करके परम कल्याण को प्रदान करने वाले हैं।

गाय की स्तुति धर्मशास्त्रों में मिलती है जहां कहा गया है कि–

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम्।
त्वं तीर्थं सर्वतीर्थनां नमस्तेऽस्तु सदनघे।।

अर्थ है कि–

हे पाप रहिते। तुम सब देवों की जननी हो। तुम यज्ञ की कारण रूपा हो, तुम समस्त तीर्थों की महातीर्थ हो, तुमको सदैव नमस्कार है।

गाय के कल्याणमय स्वरूप को सभी संस्कृतियों ने समझा है। आज साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने की दृष्टि से लोग गाय और सुअर का दुरुपयोग करते हैं। क्या गाय को मारकर किसी कौम को आहत करना उचित है ? प्रायः गोकशी की घटनायें हिन्दुओं को उत्तेजित करती हैं किन्तु सत्य यह है कि हजरत मुहम्मद साहब स्वयं गोवध के विरोधी थे। हजरत आयशा, हजरत, मुहम्मद साहब की धर्मपत्नी का कथन है कि 'फरमाया रसूल अल्लाह ने कि गाय का दूध शिफा है, घी दवा है और उसका मांस नितान्त मर्ज है।'

महारूल अनवार उर्फ मुल्ला बाकर हुसैनी का विचार था कि गाय को मारने वाला, फलदार दरख्त काटने वाला और शराब पीने वाला कभी नहीं बक्शा जायेगा। अलरहमत अल्लाम जलालुद्दीन सियुती का कथन था कि गाय के गोश्त में बीमारी है, उसके दूध में

दुआ और घी में सफा है। जाहिर है कि गाय का सम्मान धर्म का मामला उतना अधिक नहीं है जितना कि उपयोगिता का।

महात्मा गांधी जिन्हें साम्प्रदायिकता के चश्मे से नहीं देखा जा सकता वह भी गाय को भारत की समृद्धि का प्रतीक समझते थे। अपने विचार व्यक्त करते हुए सार्वजनिक सभाओं में उन्होंने कहा था कि मेरा सारा प्रयत्न गो-वध रोकने के लिए है। जो गाय को बचाने के लिए प्राण होम देने को तैयार नहीं, वह हिंदू नहीं। मेरे विचार के अनुसार गौ रक्षा का सवाल स्वराज्य के प्रश्न से छोटा नहीं है। कई बातों में मैं इसे स्वराज्य के सवाल से भी बड़ा मानता हूँ। मेरे नजदीक गो वध और मनुष्य वध एक ही चीज है।

भारतीय चिन्तन में गृहस्थों को गो सेवा का आदेश है।

गवां सेवा तु कर्तव्या गृहस्थैः पुण्यलिप्सु भिः।
गवां सेवापरो यस्तु तस्य श्रीर्वर्धतेऽचिरात।।

पुराणों में कथा आती है कि राजाराम के पूर्वज दिलीप बहुत समय तक निःसंतान थे। एक बार उन्होंने अपने कुल गुरु वशिष्ठ से हृदय की पीड़ा व्यक्त की। वशिष्ठ के पास कामधेनु थी अतः वह गाय के वरदायिनी रूप को जानते थे। उन्होंने राजा दिलीप को परामर्श दिया कि वह कामधेनु सुरभि की संन्तान नंदिनी की सपत्नीक सेवा करें तो उसके प्रतिफल से संतान प्राप्त हो सकती है। दिलीप ने तब पूर्णसमर्पण के साथ सपत्नीक नंदिनी की सेवा की और अथक सेवा के परिणामस्वरूप रघु जैसा प्रतापी शूर और सात्विक पुत्र पाया जिसके विषय में लोकप्रचलित हुआ कि "रघुकुल रीति सदा चलि आई प्राण जाये पर वचन न जाई।" वास्तव में गाय को आरंभ से ही इस देश के वासियों ने परम पवित्र माना है। वैदिक संहिताओं में ऐसे अनेक उद्धरण हैं जो गाय का समर्थन करने वाले हैं। वैदिक कवि अपनी उत्कृष्ट कविताओं की तुलना गाय के रंभाने जैसी आनन्ददायक ध्वनि से करते थे। गाय के प्रति सदाशयता के कारण ही गाय को अघन्या (अर्थात् जिसे मारना अवैध है) घोषित किया गया था। ऋग्वेद में ५६ मंत्रों में गाय को अघन्या कहा गया है। ऋग्वेद में गाय की प्रशंसा करते हुये कहा है-

माता रुद्राणां दुहिता वसुनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।।

गोवध प्रतिषेध करते हुये ऋग्वेद में उसे रुद्रों की माता वसुओं की पुत्री, आदित्यों की बहन और अमृत की नाभि बताया है। विज्ञों को बताना चाहते हैं कि निर्दोष गाय माता अदिति (देवताओं की माता) है।

अथर्ववेद में गाय के संरक्षण और गोवध के विरुद्ध कड़े शब्दों का प्रयोग किया गया है। १२वें काण्ड में कहा गया है कि-

१. जो भी गाय को निष्फल समझते हुये उसका मांस खाता है बृहस्पति के श्राप से उसके पुत्र और पौत्र भिक्षाजीवी हो जाते हैं।
२. अगर कोई व्यक्ति घर में गाय का मांस पकाता है चाहे वह यज्ञ में दी गयी हो चाहे कहीं दी गयी हो तो वह व्यक्ति देवों और ब्राह्मणों का द्वेषी समझा जाता है।

इस संसार में उसका दुखान्त होता है।

३. गाय को दुत्कारना और उसका वध करना साक्षात कष्टों को निमंत्रण देना है।

४. गाय को खाने से दरिद्रता घेर लेती है और महान विपत्तियां आती हैं।

५. उसका वध महापाप है तथा उसे मारने पर वज्राघात लगता है।

गाय की हत्या महापातकों में से मानी गयी है। उसकी सामान्य मृत्यु पर भी सूतक (शौच) लग जाता है तथा उसकी मुक्ति के लिए दानपुण्य करना आवश्यक है। गाय की मृत्यु महाशोक का अवसर समझी गयी है। गाय को मारना–पीटना–नोचना पाप माना गया है। ऐसा करने वाला शाम तक अपनी छाया नहीं देखता। गौहत्या भ्रूण हत्या के समान निंदनीय है। यज्ञों में शुद्धि के लिए पंचगव्यों का विधान है जिसका अर्थ है दूध, दही, घी, गोबर तथा मूत्र। शांखायन गृह्यसूत्र का नियम है कि यदि गाय भूखी हो तो उसके समक्ष वेद मंत्रों का पाठ नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे ज्ञान निष्फल हो जाता है। यदि गाय बछड़े को दूध पिला रही हो तो स्नातक को उसकी ओर इंगित नहीं करना चाहिए।

यदि युद्धक रथ में सवार हो तो गायों का झुण्ड देख रथ रोकर उन्हें जाने देना चाहिए। गाय का गोबर शुद्धिकरण के लिए प्रयुक्त होता है। आज कृषि वैज्ञानिक उसे बहुत उपयोगी खाद समझते हैं। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार स्नातक को गाय के समक्ष मूत्र विसर्जन नहीं करना चाहिए। ना थूकना और अपवित्र कृत्य करने चाहिए। गाय को कष्ट देने पर प्रायश्चित करने चाहिए।

१८५७ के भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अनेक कारणों में से एक तत्कालिक कारण गाय की चर्बी कारतूसों पर लगाना था जिन्हें अंग्रेज हिन्दू सिपाहियों से मुंह से खुलवाते थे और खुल्लम–खुल्ला हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को छेड़कर क्रूरता करते थे और धर्मभ्रष्ट करते थे। वीर शिवाजी ने गाय के सम्मान को राष्ट्रीय स्वाभिमान से जोड़ा था। गाय को प्रतिदिन भोजन में से अंश देना नैष्ठिक हिन्दुओं का कर्तव्य माना गया है और यह सामान्य धारणा है कि अकेली गाय में सर्वदेव (सारे देवता) समाहित है। ब्रज में गोपाष्टमी पर गायों की पूजा का विधान है तो भादों में बहोरा (बछड़ा) चौथ पर गाय और बछड़े की सम्मिलित पूजा की जाती है। श्री कृष्ण के साथ प्रायः गाय का चित्रण किया जाता है क्योंकि वह पशु संरक्षक थे। हिन्दुओं में विवाह के अवसर पर तथा शुभ कर्मों पर ब्राह्मणों को गायदान देना पुण्य समझा जाता है। गऊ शालाओं को सभी संस्कारों के समय दान दिया जाता है। उन्हें जल और भोजन देना धार्मिक कर्तव्य माना गया है तथा मृत्यु पर गाय दान नर्कोद्धार में सहायक माना गया है। श्राद्ध में गाय को भोग दिया जाता है तथा मृतक के नाम पर वर्ष पर्यन्त गाय को एक थाली भर भोजन देने का विधान है।

प्रसंगवश गोरखपुर नगर में जहां गोरक्षपीठ है सरकार द्वारा बूचड़खाना बनाया जा रहा है जहां पशुओं का वध सरकार करायेगी और लाभ के लिए उनकी हड्डी, मांस, खाल बेचेगी। पर्यावरण और पशु संरक्षण की दृष्टि से यह क्रूरतम, जघन्य घटना है जिसके सशक्त प्रतिरोध का मन योगी आदित्यनाथ जी ने बना रखा है। हम इस बूचड़खाने की स्थापना की खुलकर निन्दा करते हैं, इसे अमानवीय कृत्य मानते हैं और अपने समर्थन के लिए जनमत से अनुरोध करते हैं।

गुरु कें सम हरि को न निहारूँ

डॉ० रुद्रदत्त चतुर्वेदी

भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु के समान कोई दूसरा नहीं है। कबीर, रैदास, नानक आदि सेभी बढ़कर सहजोबाई ने गुरु को परमात्मा से ऊँचा माना है। गुरु और परमात्मा के तुलनात्मक अध्ययन में वे गुरु को तर्क सहित परमात्मा से श्रेष्ठ सिद्ध करती हैं। उनके अनुसार–

हरि ने जनम दियो जग माहीं, गुरु ने आवागमन छुटाई।
हरि ने पांच चोर दिये साथा, गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा।
हरि ने कुटुंब जाल में गेरी, गुरु ने काटी ममता बेरी।
हरि ने मोसूं आप छिपायो, गुरु दीपक दै ताहि दिखायो।

यों भारतीय दर्शन में गुरु की महत्ता अक्षुण्ण रही है परन्तु ऐसी अगाध श्रद्धा वह भी तर्कयुक्त सहजोबाई के पदों में है। कारण उनकी अनुभूति है। चूँकि भारतीय गुरु केवल लौकिक ज्ञानदाता ही नहीं बल्कि परलोक दाता भी है जो केवल अनुभव जन्य है। अतः 'जो जानै सो मानै' की कहावत चरितार्थ होती है।

गुरु कौन है ? जो आत्मज्ञान दाता है। जैसे योग्य शिक्षक द्वारा ही किसी विषय का ज्ञान सम्यक् रूप से दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार आत्मज्ञान, दाता के विषय में गुरुगीता बताती है–

"ब्रह्मानन्दं, परमसुखदं केवलं ज्ञान मूर्ति
द्वंद्वातीतं, गगन सदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम।"

अर्थात वह सर्वश्रेष्ठ आनन्द का धनी है, स्वामी है। उस आनन्द का जो स्थाई सुख देने वाला है (क्योंकि सांसारिक, इन्द्रियजन्य भोग क्षणिक सुख बाद में पश्चाताप देते हैं।) वह ज्ञान की साकार मूर्ति है। वह द्वन्द्व (कनफिल्कट्स–यह वह) से रहित है। आगे गुरुगीता बताती है–

"एकं, नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षिभूतं
भावातीतं, त्रिगुण रहितं, सद्गुरुं तं नमामि।"

अर्थात् वह एक (यूनीक परसोनैलिटी) है उसकी शिक्षायें सदा अपरिवर्तनीय होती हैं। वह नित्य (युनिवर्सल) है। विमल (शुद्ध) और अचल (स्थिर) है। वह टी. वी. वाला गुरु नहीं जिसकी कथनी और आचरण में भेद हो। उसने जो काफी समय पूर्व कहा था–उसका वचन आज भी वही होगा क्योंकि सत्य सदा सर्वदा सर्वकालिक होता है।

सद्गुरु साक्षी अर्थात् जगद्दृष्टा होता है। अतः उसकी दृष्टि अपने शिष्य वर्ग की प्रत्येक गतिविधि पर रहती है। वह सकारात्मक नकारात्मक भावों से परे होता है जिन्हें हम

सत्व, रज, तम कहते हैं। इन लक्षणों वाले व्यक्ति को गुरु कहा जाता है और उन्हें नमन किया जाता है।

यह कलिकाल की गति है कि आजकल ध्यान, ज्ञान और मुक्ति दाताओं की भीड़ आ गई है। उनका भी वस्तु की भांति बाजारीकरण हो गया है। तुलसीदास ने लिखा था–"....मूंड मुड़ाय भये सन्यासी" लेकिन अब तो "बाल बढ़ाय भये सन्यासी" का प्रचलन चल रहा है। महाभारत में एक प्रसंग आता है कि किसी राजकुमारी का विवाह बहुत शीघ्रता में होने वाला था। चूंकि स्वयंवर था अतः राजकुमारों को अपने लिए सुन्दरतम वस्त्रों की चाह थी ताकि उनका ही चयन हो। जब घटोत्कच को मालूम पड़ा तो उसने माया से बहुत सारे वस्त्र तैयार कर दिये और राजकुमारों ने खरीदे। स्वयंवर में जब राजकुमारी वरमाला लेकर बढ़ी तो सभी राजकुमारों के मायावी वस्त्र गायब हो गये और वे अधोवस्त्रों में रह गये। आज के टी. वी. गुरु भी माया बाजार के वस्त्रों की तरह है जो त्याग का उपदेश देकर स्वयं राग में लिप्त हैं।

श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया है–**"मामेव ये प्रपद्यन्ते माया मेतां तरन्ति ते"** अर्थात् जो अनन्य भाव से मुझे भजते हैं वे सारी माया से सहज में पार हो जाते हैं। ऐसे सद्गुरु अनेक जन्मों की साधना के पुण्य प्रताप से मिलते हैं। ऐसे ही गुरु के लिए आचार्य रजनीश कहते हैं कि–वह आत्मा मानव और आत्मा परमात्मा है यदि तुम उसकी शरण पहुँच गये तो समझो परमात्मा प्राप्त हो गये। जब हम ऐसे सद्गुरुओं की चरण शरण प्राप्त कर लेते हैं (हालांकि हम वहाँ लौकिक कष्टों के निवारण के बहाने पहुँचते हैं) तो वे करुणा सागर अपनी शक्ति संचार कर शिष्य को सब भांति कृतार्थ कर देते हैं।

यदि गुरु के उपरोक्त लक्षण और विशेषताएं हैं तो शिष्य के लिए भी कुछ आवश्यक गुण होना चाहिए। श्रीमद् शंकराचार्य कहते हैं–**"शिष्यस्तु क यो गुरुभक्त एव"** अथवा गीता बताती है–**"श्रद्धावान लभते ज्ञानं, तत्परः संयतेन्द्रियः"** अर्थात् शिष्य की गुरु में श्रद्धा हो क्योंकि यदि वह गुरु को समर्थ और योग्य नहीं मानता तो सीखेगा क्या ? तत्परता अर्थात् प्रेरणा (मोटीवेशन) हो अन्यथा शारीरिक उपस्थिति तो होगी परन्तु सीखना (लर्निंग) नहीं और अंतिक गुण है–संयतेन्द्रिय अर्थात् नियमितता। पारलौकिक ज्ञान या आत्मज्ञान के लिए श्रद्धा दूसरे शब्दों में अनन्यता का भाव (अर्थात् अन्य कोई दूसरा नहीं) साधना की सफलता के लिए आवश्यक है।

कुलार्णव तंत्र कहता है कि जिस प्रकार एक दीपक से अनेक दीपक प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार एक सद्गुरु से अनेकानेक शिष्य प्रकाशित होते हैं। गुरु की शक्ति अज्ञान का विनाश कर हृदय में प्रकाश भरती है। सद्गुरु मंत्र को चेतन करते हैं जिससे मंत्र की शक्ति जाग्रत होकर स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ाती है। गुरु मूलाधार निवासिनी कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर शिष्य को तत्काल योग की अनुभूति कराता है। उत्तर भारत में एक

योगिराज सद्गुरु देव हुए हैं–"श्री चन्द्रमोहन जी"–जो एकाधिकबार अखिल भारतीय योग सम्मेलन की अध्यक्षता कर चुके थे। वे अपने दीक्षित शिष्यों को "रज अथवा पुष्प" प्रसाद खिलाकर ध्यान में बैठालते थे और प्रथम दिवस ही जाग्रति हो जाती थी। श्री गुरुदेव के पास प्रतिदिन शिष्यों और जिज्ञासुओं के सैकड़ों पत्र आते थे। उन सभी पत्रों के उत्तर में श्री गुरुदेव यह अवश्य लिखवाया करते थे–"चिरंजीव तुम अपने गुरुमंत्र का चलते–फिरते, उठते–बैठते हर समय जाप करते रहा करो" चूंकि मंत्रशक्ति जाग्रत हो चुकी होती थी, अतः प्रभाव दिखने लगता था। इसके साथ ही वे उन्हें श्री प्रभुजी (योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज) के चरण कमलों का अनन्य भाव से चिंतन करने का परामर्श भी देते थे जो प्रगति का सहज मार्ग है।

और अंत में फिर सहजोबाई के अनुसार सद्गुरु भी चार प्रकार के होते हैं–

"गुरु है चार प्रकार के, अपने अपने अंग।
गुरु पारस, दीपक गुरु, मलयागिरि गुरु भृंग।"

***

शरीर है मरता, जीव अमर है.....

शरीर है मरता, जीव अमर है, गीता में यह ज्ञान दिया।
समर्पण कर दे प्रभु चरणों में, गुरु जी ने यह उपदेश दिया।।
प्रारब्ध की यह कर्म भूमि, संचित कर्म सुरक्षित हैं
क्रियमाण सुधार ले लल्ला, पुनरावृति निश्चित है
अद्भुत है योग की शक्ति, अर्जुन को जो ज्ञान दिया।। शरीर है.....
राजस तामस तज कर सारे, सात्विक कर्म अपना ले रे
राग द्वेष के बक्कर छोड़ के, प्रेम की जोर जगा ले रे
अहं की होली जला के लल्ला, स्वयं को स्वयं का मित्र बना।। शरीर है.....
संयमी बन कर ध्यान लगा ले, ज्ञान यज्ञ से समाधी पा ले
स्वधर्म है परम धर्म, परा धर्म भय फैला दे
गुण ही गुणों में वर्त रहे हैं, जैसे है सृष्टि चक्र चला।। शरीर है.....
दैवी सम्पदा से आत्म शुद्धि, विराट रूप दृश्य पाएगा
अनासक्ति से कर नियत कर्म, सांख्य योगी बन जाएगा
इन्द्रिय दमन कर ले "अधम", भ्रमित माया गुरु के सिवा।। शरीर है.....

–जगदीश राय बंसल 'अधम'

मौत अस्तित्व की सबसे बड़ी पहेली

दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर, अलीगढ़

अस्तित्व का सबसे बड़ा रहस्य क्या है ? यह जीवन नहीं है। यह प्रेम नहीं है। यह मौत है। विज्ञान जीवन को समझाने की कोशिश करता है। अतः यह आंशिक रहती है। जीवन सम्पूर्ण रहस्य का एक भाग है। एक बहुत छोटा बाहरी भाग। इसमें कोई गहराई नहीं है इसलिए विज्ञानी भी अल्पज्ञान देता है।

जीवन सीमित है, क्षणिक है। यह एक शीतल वायु का झोंका है। यह आता है और चला जाता है। यह ठहरता नहीं है इसलिए विज्ञान केवल आंशिक सच्चाई जानता है। प्रेम मध्य रास्ते में है। यह वास्तव में जीवन और मौत के बीच में आता है। प्रेम जीवन से कहीं ज्यादा रहस्यमयी होता है क्योंकि इसमें जीवन होता है और जीवन से कहीं ज्यादा। यह जीवन प्लस मौत है। और केवल वही जो मरने को तैयार होते हैं वही प्रेम के जीवन को जान सकते हैं। जो मरने से डरते हैं भयभीत होते हैं, प्रेम के रहस्य में कभी प्रवेश नहीं करते हैं।

कला प्रेम की दुनियाँ की खोज करती है। इसलिए कला विज्ञान से ज्यादा सच्ची होती है और यह विज्ञान से ज्यादा गहराई में उतरती है। एक कलाकार की दृष्टिगोचरता वैज्ञानिक ज्ञान से ज्यादा होती है। यद्यपि कलाकार का तरीका विज्ञान के तरीके से भिन्न होता है। तरीका को भिन्न होना पड़ता है। क्योंकि विज्ञान (ओब्जैक्टिव) हो सकता है क्योंकि यह हर चीज घेरे में लेकर चलता है। कला पूर्णरूप से पदार्थ विषयक (ओब्जैक्टिव) नहीं हो सकता है। कल ५०% ओब्जैक्टिव है और ५०% सब्जैक्टिव है। यह देखने वाले से अलग नहीं हो सकता।

धर्म आधारिक रूप से मौत से संबंधित होता है। मौत में सब कुछ शामिल है—जीवन, प्रेम तथा कुछ और ज्यादा। मौत इनका सर्वोच्च शिखर है। मौत वह संगीत है जो धीरे-धीरे तेज होता चला जाता है। जीवन आधार है और मौत चोटी है। प्रेम इन दोनों के बीच में है।

रहस्यवादी मौत के रहस्य को पता मिलने की कोशिश करते हैं। इस प्रक्रिया में उसे जानकारी होती है जीवन क्या है ? प्रेम क्या है ? वह इसके ध्येय नहीं है। उसका ध्येय मौत में प्रवेश करना होता है। क्योंकि मौत से रहस्यमयी कोई दिखाई नहीं देता। मौत की वजह से प्रेम में कुछ रहस्य होता है। जीवन में भी मौत की वजह से रहस्य होता है।

यदि मौत गायब हो जाये तो जीवन में कोई रहस्य नहीं होगा। यही कारण है कि मृत चीज में कोई रहस्य नहीं होता है। एक मृतक शरीर में कोई रहस्य नहीं होता है। क्योंकि

इसकी अब दुबारा मौत नहीं हो सकती। मौत गायब हो गई है और मौत के साथ जीवन भी गायब हो जाता है। जीवन केवल मौत का एक स्पष्ट करने का तरीका है।

धर्म की स्थापना इसलिए हुई कि मौत को समझना है और मौत का समझना सब कुछ समझना होता है। मौत का अनुभव करना सबका अनुभव करना होता है। मौत के अनुभव में सबका अनुभव करते हुए दैवीय क्षेत्र में प्रवेश करना होता है। मौत ईश्वर के मंदिर का दरवाजा है। चिंतक स्वयं सेवक की तरह से मरता है। रहस्यवादी स्वयंसेवक की तरह से मरता है. रहस्यवादी वास्तविक मौत से पहले कई बार मरता है। वह चिंतन में मरता है। प्रेमी इस बारे में थोडा सा जानता है क्योंकि ५०% प्रेम मौत होता है। इसलिए प्रेमी चिन्तनशीलता के विषय में कुछ जानते हैं। अचेतन रूप मे प्रेमी इस स्थिति में आ गये हैं। वे शान्ति, स्थिरता, समय की सीमा नहीं को जानते हैं। यह उनकी आधारिक खोज नहीं होती है।

रहस्यवादी लगातार रूप से मरता है। वह ओस की बूँदों की तरह तरोताजा रहता है या सूर्योदय के समय कमल के पत्तों की तरह जो जल में रहते हैं, उसकी ताजगी, उसकी जवानी, और उसकी Timelessness (कुसमयता) मरने की कला पर आश्रित रहती है और जब वास्तविक मौत आती है तो उसे किसी से भी भय नहीं होता है क्योंकि हजारों बार उसने इस मौत को जाना है। वह रोमांचित हो जाता है, आकर्षित हो जाता है, वह नाचता है, बडी प्रसन्नता के साथ मरना चाहता है इसलिए वह बिना बेहोशी के मरता है और वह मौत के हर रहस्य को जानता है। इसे जानकर, उसके हाथ में मास्टर चाबी मिल जाती है जिससे वह सभी दरवाजों को खोल सकता है। वह इस चाबी से ईश्वर के दरवाजे को भी खोल सकता है।

* * *

मनस्तापं न कुर्वीत आपदां प्राप्य।

(गरुड़पुराण १११/१३७)

विपदा आने पर मन को दुःखी नहीं करना चाहिये। यदि हमें यह ज्ञान हो जाये कि यह विपदा स्वयं टलने वाली है, धीरे–धीरे उत्तम समय आने वाला है। हम प्रकाश की ओर चल रहे हैं। हमारी समस्याऐं अपने–आप हल होने वाली हैं, तो हमारी बहुत सी पीड़ायें स्वतः दूर हो जायेंगी। समय की गति के साथ अज्ञान, मोह, और विषम कामनाऐं समाप्त हो जाती हैं।

सवांई में श्री गुरुपूर्णिमा व रुद्र महायज्ञ धूमधाम से सम्पन्न

आज्ञानान्धकार को मिटाकर शिष्य के जीवन का कल्याणकारी दिग्दर्शन करने वाले गुरुदेव भगवान का स्मरणीय दिवस गुरुपूर्णिमा गत 11 जुलाई 2006 को श्री सिद्धगुफा, सवांई, आगरा पर सोल्लास मनाया गया। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं सद्गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के प्रति सुदूर स्थानों से आये हजारों श्रद्धालु गुरु भाई–बहिनों ने पूजा–अर्चना व ध्यान कर अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये। समूचा वातावरण आध्यात्मिक अनुभूति से जीवंत हो उठा। सभी ने महाप्रभुजी एवं श्रीसद्गुरुदेव की कृपावर्षा का सुखद अनुभव किया।

इसके साथ ही 13 जुलाई से आश्रम पर ही रुद्राभिषेक महायज्ञ का भी आयोजन किया गया, जो अनवरत 23 जुलाई तक चलता रहा। परमपूज्य आचार्य श्री महादेवजी के प्रमुख शिष्य कर्णवास निवासी आचार्य श्री वैकुण्ठ शर्मा के आचार्यत्व में ग्यारह दिवसीय इस महायज्ञ में विद्वान आचार्यों ने भाग लिया। इस यौगिक अनुष्ठान में सैकड़ों गुरुभाई–बहिन सम्मिलित हुए और आध्यात्मिक साधना में तत्पर रहे। प्रात: 4 बजे आरती व गीता पाठ के पश्चात् डेढ़–दो घण्टे तक साधकों को गुरु भवन और यज्ञशाला में ध्यान योग में अवस्थित देखा गया। मन्त्रजाप और ध्यान का खूब अभ्यास किया गया। वस्तुत: मानव शरीर द्वारा यह योग साधनानुष्ठान ही सर्वथा करणीय है।

23 जुलाई को पूर्णाहुति के साथ ग्यारह दिवसीय रुद्रमहायज्ञ का विधिवत् समापन आध्यात्मिक वातावरण में हुआ। पश्चात्, पूर्ण मनोयोग से इसमें भाग लेने वाले साधक गुरुभाई–बहिन अपने–अपने स्थानों के लिए रवाना हो गये। इस प्रकार बहुत सुन्दर और शान्तिपूर्ण वातावरण में महायज्ञ और अनुष्ठान सम्पन्न हुए।

■■■

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/06-08

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER
BOOK-POST

श्री/श्रीमती _____

_____

_____

□□□□□□

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

ब्रांड (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनौखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर ऐच्छिक आकार (स्थान सहित) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति वैनल प्रतिमाह पेस्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड आदि पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु० 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु० 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर जानकारी का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

August, 2006

संस्थापक–योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डा. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर. एन. आई. रजि. न. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दासलाल शर्मा

PRINTCON 0562-2260201